256
निराला
विवेचन
NARENDER

नीरजा-विवेचन

(अर्थात् नीरजा की व्याख्या)

लेखक
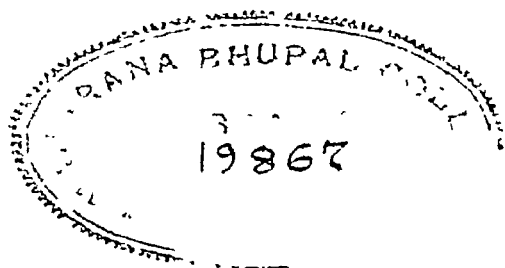
सत्यपाल चुघ एम. ए., सा० रत्न

प्राध्यापक, के. एम. कालिज, दिल्ली विश्वविद्यालय

मूल्य ३)

ओरिएण्टल बुक डिपो

१७०४, नई सड़क, दिल्ली ।

मेरा दृष्टिकोण

'नीरजा' महादेवी जी की उत्कृष्ट कृति है। मैंने इसकी व्याख्या इसलिए की है क्योंकि महादेवी के अर्थ उनकी भावधारा के समान ही रहस्य बने रहे हैं। 'नीरजा' की व्याख्या करने मे मैंने सर्वप्रथम महादेवी जी के दृष्टिकोण को ध्यान में रखा है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि को भी उचित महत्त्व दिया है। नीरजा की व्याख्या करना मेरा एक प्रयास है। मैं इसे एक प्रयास ही कहूँगा क्योकि इस दिशा में मुझे पूर्ण सन्तोष नही। तात्पर्य यह है कि महादेवी की व्याख्या में कही और अधिक सौन्दर्य आ सकता है और इसकी ओर मे प्रयत्नशील भी रहूँगा। इस दृष्टि से मै विज्ञ पाठको-आलोचको की सम्मतियो का सहर्ष स्वागत करूँगा।

मै उन सभी आलोचको का आभार स्वीकार करता हूँ जिनकी कृतियो से मैंने ज्ञात-अज्ञात रूप से प्रेरणा ग्रहण की है। वस्तुतः यदि इस पुस्तक में मुझे कुछ भी सफलता मिली है तो उसका श्रेय मेरे गुरुवरो—डा० नगेन्द्र, प्रो० विजयेन्द्र स्नातक तथा डा० ओम्प्रकाश को है। गलतियाँ मेरी अपनी हैं। इनके अनुप्रेरण-उत्साहन से ही मैंने लिखने का कुछ साहस किया है।

सत्यपाल चुघ

के० एम० कालिज, दिल्ली

द्वितीय खण्ड

'नीरजा' की व्याख्या

: १ :

अवतरण—सांध्यगीत की भूमिका मे महादेवी लिखती है—

"नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियो में वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। 'रश्मि' को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूतियो से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था। परन्तु 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमे अनायास ही मेरा हृदय सुख दु:ख मे सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा। पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम रोम मे ऐसा पुलक दौड जाता था मानो वह मेरे ही हाथ मे खिला हो; परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव मे एक अव्यक्त वेदना भी थी, फिर वह सुख-दु:खमिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अब अन्त में मेरे मन ने न जाने कैसे उस बाहर भीतर मे सामञ्जस्य सा ढूंढ लिया है जिसने सुख दु:ख को इस प्रकार का बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिला रहता है।"

इस प्रकार नीहार की कुतहलमिश्रित वेदना और रश्मि के दर्शन-चिन्तन के पश्चात नीरजा सुख-दुख के सामञ्जस्य को लिए हुए अलौकिक वेदना तीव्र तथा अनुभूति घनीभूत हो गई है (वैसे भी नीरजा, कमलिनी को दिन भर ताप सहन करना पड़ता है)। यह वेदना भी मधुर है, उज्जवल-आह्लादकारी है। इसमे विषाद की कालुष्य-

कालिमा नही। इस प्रथम कविता मे नीरजा काव्य की सत्वगुण सम्पन्न निर्मल-अनासक्त हार्द (Spirit) के सम्वन्ध मे कोमल गर्वोक्ति हुई है। आत्मा एक प्रोषितपतिका के समान विरहिणी है। उस अव्यक्त प्रियतम (ब्रह्म) की मुस्कान की एक झलक उसे तृप्त कर सकती है।

[प्रिय इन नयनो का अश्रु-नीर !]

शब्दार्थ—आविल=मैला, कलुष युक्त। फेनिल=झागदार।

अर्थ—हे प्रिय ! यह अश्रु रूपी नीर अनन्तकाल से—जब से आत्मा परमात्मा से विलग हुई है तव से—प्रवहमान है, मानव चेतना का प्रवाह युग युगान्तरो से निरन्तर वह रहा है और वह तुमसे मिलने के लिए ही आकुल-व्याकुल है।

इस अश्रु अथवा मानवचेतना के प्रवाह मे ऐन्द्रिय सुख का पंक तथा दुख का कालुष्य है—सुख और दुख दोनो इसे मलिन वना रहे है

(सात्विक भावनाओ के अभाव में राजसिक और तामसिक भावनाएं दुख ही पहुंचाती है)। मानव की क्षणभंगुर इच्छाकांक्षा वुदवुद के समान उठ गिर कर इसे फेनिल करती रहती है—पीड़ा पहुंचाती रहती है।

विशेष—१. आत्मा-परमात्मा एक थे। जव आत्मा अलग हुई उस परमात्मा से वियुक्त होने की चेतना (होश) जगी, तव से इस चेतना के परिचायक अश्रु वह रहे है। 'रश्मि' मे महादेवी ने कहा ही है—

"'जन्म ही जिसको हुआ वियोग,
तुमारी ही तो हूं उच्छ्वास।"

जीव का ब्रह्म से वियुक्त होना ही उसका जन्म है'।

—२. 'आविल', 'पंकिल', 'फेनिल', शब्दो की ध्वनि का लालित्य—लावण्य प्रशंसनीय है।

३. शम्भुनाथसिंह ने 'अश्रुनीर' में पुनरुक्ति दोष देखा है किन्तु ऐसा नहीं है—क्योंकि 'बुदबुद' तथा फेन दिखाने के लिए अश्रु से काम न चलता, 'नीर' आवश्यक था।

[जीवनपथ का दुर्गमतम तल]

शब्दार्थ— दुर्गमतम=कठिनतम। सजल=जलयुक्त। युग=दो। तृषित=प्यासा। तीर=किनारा।

अर्थ—जिस प्रकार कोई नदी अपने असम-अनगढ़ तथा शुष्क-कठोर मार्ग को एकरूप तथा गीला करती हुई दोनों किनारो पर रहने वाले प्यासे लोगो को भी शीतल करती रहती है उसी प्रकार करुणा का प्रवाह अपने विषम तल (जीवन) को समव्यवस्थित तथा उसकी दुर्वह कठिनाइयो को कम करता हुआ दोनो सूखे किनारों—जन्म और मृत्यु, जिसके बीच जीवन चल रहा है—को शीतल करता है।

विशेष—१. करुणा के अभाव मे जीवन मे शुष्कता-नीरसता रहती है—यही इन पक्तियो का सार है। करुणा के द्वारा आत्मा का विस्तार-परिष्कार होता है और उसके बिना आनन्द असम्भव है।

पंत ने भी 'गुंजन' की "नौका विहार" मे जन्म और मृत्यु को जीवन के दो किनारो के रूप मे लिया है :—

चिर जन्म मरण के आर पार।
शाश्वत जीवन नौका विहा ।।

सांध्यगीत मे महादेवी ने कहा है—"सुरभित इ जीवन मृत्यु-तीरें" एक और स्थान पर विरह-मिलन सरिता के दो कूल कहे गये है :—

चिर मिलन-विरह पुलिनो की
सरिता हो मेरा जीवन

किन्तु यहां जीवन-मृत्यु वाला अर्थ अधिक संगत प्रतीत होत है।

[इसमें उपजा यह नीरज सित]

शब्दार्थ—सित=श्वेत, मीलित=संकुचित।

अर्थ—इसी सुख दुख से पंकिल जल से एक शुभ्र-श्वेत कमल उत्पन्न हुआ है जिस की पंखुडियाँ कोमल, अर्धविकसित तथा सकुचित-मीलित हैं। यह अपने मे सौरभ रूपी मधुर वेदना को छिपाए हुए है।

विशेष—१. श्वेत कमल महदेवी की साधना-साध्य, सात्विक कृत्ति 'नीरजा' का प्रतीक है जिसमे लौकिक कामनाओ का कर्दम नही, सात्विकता की स्वच्छता है।

२- (He incudes she) के आधार पर 'नीरज', 'नीरजा' हो गया है। 'कोमल कोमल' लज्जित तथा मीलित स्त्रियोचित विशेषण भी नीरज को 'नीरजा' (इस काव्यग्रन्थ की ओर सकेत) वना रहे हैं। 'कोमल-मीलित आदि नीरजा की अव्यक्त रहस्यवादी भावनाओ की ओर भी सकेत कर रहे है। मधुर वेदना के कारण 'कोमल' विशेषण आया है। कमल अभी लज्जित-मीलित ही है क्योंकि सूर्य रूपी प्रियतम के द्वारा वह पूरी तरह से खिल सकेगा। अभी तक प्रियतम की कृपा प्राप्त नही हुई।

३.'मधुर पीर'— इस काव्यग्रन्थ मे ऐन्द्रिय वासनाओ से मुक्त, आह्लादकारी अलौकिक वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। जिस प्रकार कमल का सार सौरभ में है इसी प्रकार 'नीरजा' का सर्वस्व मधुर पीडा मे है।

[इसमें न पंक का चिह्न शेष]

शब्दार्थ - सलिल=जल।

अर्थ —यह नीरजा भौतिक सुख दुख के सलिल-पंक से असम्पृक्त

है । इस पर भ्रमरो की भीड़—लौकिक मायाजाल—का भी कोई प्रभाव नही पड़ता ।

विशेष—पक तामसिक वृत्तियो से उत्पन्न दुख तथा सलिल राजसिक वृत्तियो से उत्पन्न सुख का प्रतीक है ।

["तेरे करुण-कण से विलसित"]

शब्दार्थ—विलसित = चमकता हुआ ।

अर्थ—प्रियतम को सम्बोधित करके साधिका कहती है कि यह नीरज तुम्हारे करुणा-जल से ही सुशोमित हो सकता है। हे अरुण (सूर्य) स्वरूप प्रियतम तुम्हारी चितवन की किरणों तथा तुम्हारी चेतनारूपी प्रात कालीन सुखद समीर के स्पर्श से ही इस अर्धविकसित कमल का विकास-विलास सम्भव है ।

विशेष—१ कमल के विकास के लिए जल, समीर तथा रविकिरणो की ही आवश्यकता होती है और वही यहाँ है ।

२. 'नीरजा' की आगामी कविताओ में जिन भावनाओ की अभिव्यक्ति हुई है उनकी मूलाधार यह कविता है ।

३. इसमे रहस्य-भावनाओ के अनुकूल ही लाक्षणिक-सांकेतिक शैली का प्रयोग हुआ है । यह शैली तथा चित्रमयता, अर्थगाम्भीर्य आदि विशेषताए जो इस कविता मे मिलती है वही नीरजा की आगामी कविताओ की सामान्य विशेषताए है ।

४. यहा सांगरूपक अलकार है । क्योकि कमल विशेष है, इसीलिए उसे भौरे नही जगा सकते—ऐसा कहा गया है ।

: २ :

अवतरण— इस कविता में वसंत की उस मादक रात्रि का मधुर आवाहन किया गया है जिसमें मन अनायास ही अभिसार के लिए चंचल हो उठता है।

[धीरे धरे उतर क्षितिज से]

शब्दार्थ— वलय = चूडी। मुक्ताहल = मोती। अवगुंठन = घूंघट। अभिराम = सुन्दर।

अर्थ – हे वसन्त रजनी तू क्षितिज से धीरे धीरे उतर कर विश्व में पदार्पण कर। तू अभिसारिका है अतएव अन्तर्वाह्य शृङ्गार कर। तारे रूपी मोतियों से तुम्हारी नई गुंथी हुई वेणी हो। प्रकाशपूर्ण चन्द्रका शीशफूल तथा श्वेत किरणों की चूडियाँ तुम्हारा शृंगार करें। हृदय में पुलक धारण कर, जल से रिक्त शुभ्र-श्वेत बादलों के घूंघट को सँवार तथा अपनी दृष्टि-प्रसार से ओस मोतियों को विकीर्ण करती हुई विश्व पर उतर आ ?

विशेष— यहाँ प्रकृति के मानवीकृत रूप अभिसारिका नायिका की भव्य झाँकी है।

२. यहाँ बीच की तीन पंक्तियों में सांग रूपक का निर्वाह हुआ है किन्तु अन्त में सारे छन्द को समासोक्ति में आवसित कर दिया है।

३. अलकारों में रूप और रंग की योजना का विधान है।

४. पंत की 'संध्या रूपसि' तथा निराला की 'संध्या सुन्दरी' से तुलना कीजिए—

कौन तुम रूपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप
सुनहरा फैला केश कलाप
मधुर मंथर मृदु मौन।

—पंत

दिवस अवसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है,
संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे ।

—निराला।

५. 'तारकमय नव वेणी वन्धन' मे अग्रेजी के कवि शैली की 'The cloud शीर्षक कविता मे प्रयुक्त star in wrought' का आभास चाहे मिलता हो, किन्तु महादेवी ने इस का अनुकरण नही किया।

[मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि]

शब्दार्थ— तरंगिणि=नदी, किंकिणि=करधनी, कटि पर धारण किए जाने वाला एक आभूषण। तरल=द्रव, तीव्रगामी।

अर्थ— वायु से हिलते हुए पत्तो की मर्मराहट नूपुर ध्वनि, सर-सरिताओ के कमलो मे वदी भ्रमरो की गुंजार ही करधनी का स्वर और मद-मस्त प्रवाह वाली नदी ही मानो तुम्हारी मथर चाल हो। हे सखी अपनी स्निग्ध हँसी से चाँदी के समान श्वेत चमकीली ज्योत्स्ना फैलाती हुई आ।

[पुलकित स्वप्नों की रोमावलि]

अर्थ— रात्रि के समय विश्व को स्पदित-रोमाचित करने वाले मधुर स्वप्न तेरी रोमावली हो, भावी मधुर मिलन की अनदमयी कल-कल्पनाओं से तुम्हारा रोम-रोम खिला हो। तेरे कमल-कोमल करो में अतीत जीवन की मधुर स्मृतियाँ अंजलि स्वरूप हो। हे सखी ! मलय समीर तुम्हारा

चंचल दूकूल हो । जैसे रात्रि की श्यामल छाया विश्व के अभिसारार्थ अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करती है वैसे ही तू भी घिर कर विश्व के अभिसारार्थ उपयुक्त अवसर प्रदान करती हुई, अभिसारिका के समान सकुचाती हुई— जडित-पद नमित-पलक-दृगपात वाली लज्जावनतमुखी होकर—विश्व पर उतर आ ।

विशेष—'पुलकित स्वप्नों' मे विशेषण विपर्यय अलकार है ।

[सिहर-सिहर उठता सरिता उर ।]

शब्दार्थ— सिहर उठा=काँप उठा । पदचाप=पदध्वनि । पुलकित =रोमाचित ।

अर्थ— वसत आदि का परम सुन्दर रूप उस 'चिर सुन्दर' परमात्मा का ही रूप है । प्रकृति उसका स्वागत करती है ! मानो यह प्रकृति (अवनि)-नायिका अपने प्रिय वसत के आगमन से पुलकित हो गई है ।

सरिता का हृदय किसी आतरिक सुख की प्रेरणा मे स्पदित हो उठा । मकरद मे भर-भरकर फूल खिल उठे । (वसत के समय प्रकृति मे प्रफुल्लता आती ही है ।) प्रत्येक पल मस्ती से भरकर बार-बार लौट कर आने लगा— समय मे एक प्रकार का स्पन्दन होने लगा । अवनि-नायिका रहस्यमय परोक्ष प्रियतम की पद-ध्वनि सुनकर सरिता फूल आदि के रूप मे पुलकित हो उठी ।

विशेष—उपरोक्त सामान्य अर्थ के अतिरिक्त प्रतीको के द्वारा (अवनि रूपी) नायिका पर भी यह अर्थ घटित हो रहा है, क्योकि इस से अभिसार दशा का प्रकाशन हुआ है । जैसे सरिता के हृदय में कंपन के कारण ही तरगें उठने लगी । 'सुधा' (अर्थात् उल्लास) से भरकर 'सुमन' खुल पडे मन की अभिसार के लिए लज्जा दूर हो गई । पलकें

भी प्रसन्नता से मचल उठी। यहाँ सात्विक अनुभावों का सौन्दर्य दर्श-नीय है।

२. वसत रजनी का अन्य प्रतीकार्थ भी सार्थक है। वसत=यौवन; रजनी=विलास। दोनो विलासात्मक प्रभाव डालते है।

३. प्रकृति का वर्णन उद्दीपन के रूप मे हुआ है।

४. समस्त कविता मे सांगरूपक अलकार की छटा है।

५. इस कविता मे अर्थ का इतना सौन्दर्य नही जितनी चित्रण की रुचिरता है।

: ३ :

अवतरण—प्रकृति के मादक वातावरण में प्रियतम की सुधि आ जाने से कवयित्री ने आँसू बहाए हैं और अपने दुखी जीवन को सुखी बनाने के लिए प्रिय-मिलन की कामना-प्रार्थना की है।

[पुलक-पुलक उर, सिहर-सिहर तन]

शब्दार्थ—प्रवाल=किसलय। शेफाली=नील सिंधुवार का पौधा।

अर्थ—"ज्योत्स्ना धौत वासंती निशा है, मलय पवन वह रहा है। नायिका उद्यान में है, पुष्पों की भीनी गंध, समीर का रोमांचकारी स्पर्श और उजली चाँदनी का रम्य-दर्शन उसके प्राण, तन और नयन में मादकता भर संज्ञाहीनता का आह्वान कर रहे हैं। ऊपरी दृष्टि से देखने पर ये पंक्तियाँ मधु ऋतु की रजनी का सामान्य वर्णन प्रतीत होती हैं। पर कवयित्री एक साँस में न जाने कितनी बातें सोच रही है। शेफाली उसकी आँखों के सामने सकुचा रही है, लज्जा रही है, खिल रही है। उसे तो ऐसा अवसर कभी नहीं मिला कि किसी की समीपता प्राप्त करके वह भी एक पल को सकुचा पाती, लज्जा लेती, खिल उठती। सारा यौवन प्रतीक्षा में ही ढल गया, मन के सारे अरमान आँसू बनकर ही बिखर गए, समस्त जीवन केवल सूनेपन में ही परिवर्तित हो गया। डाली-डाली पर मौलश्री आज अलसाकर शयन कर रही है। मधुपवन का उसे मादक परस मिला है। इतने पर वह न अलसाएगी? पर उसके जीवन में विद्युत् स्पर्श तो बहुत दूर, दर्शन भी दुर्लभ हो उठा है। कभी होगा भी अथवा नहीं, इसका भी अब क्या भरोसा है।

कुंजो के नीचे झरते हरसिंगार की शैय्या पर तम और चाँदनी आलिंगन-पाश मे बद्ध पड़े है और वह मधुपवन ! इसे देखो, इस लोभी ने इतने मधुका संचय किया है कि उसके भार से इससे चला भी नही जाता । पर कितना अजान, कितना निष्ठुर है अपना प्रेमी जो हृदय के मानस को सूखते देख रहा है और आता नही । अंतर भर उठता है, शरीर सिहर उठता है और आँसू की बूंदे बरौनियो में उलझकर रह जाती है । पर इससे लाभ ? सब व्यर्थ है । सब सारहीन ! विरह सत्य ! प्रतीक्षा सत्य है !! व्यथा सत्य है !!!"[1]

विशेष १—पुलकन सिहरन तथा झरते हुए आँसू सात्विक अनुभाव है । यह अनुभाव सारा रहस्योद्घाटन कर रहे है—मूल भाव को बता रहे है । 'रश्मि' की इन पंक्तियो से तुलना कीजिए—

"किस सुधि-वसन्त का सुमन-तीर
कर गया मुग्ध मानस अधीर
× × ×
मंजरित नवल मृदु देह डाल
खिल उठता नव पुलक-जाल
मधु-कन सा छलक नयन-नीर
× × ×
अलि सिहर-सिहर उठता शरीर

२. 'बुनते''''''''जाली'—की तुलना प्रसाद के 'आँसू' की निम्न पंक्तियों से की जा सकती है :—

"लिपटे पड़े सोते थे मन में
सुख-दुख दोनो ही ऐसे
चन्द्रिका अँधेरी मिलते
मालती कुंज में जैसे।"

---

१. विश्वम्भर 'मानव'

किन्तु महादेवी के 'जाली' शब्द से धूपछाही कपड़े का संकेत मिलता है जिसमे दो रगो की चमक होती है।

३. "शेफाली और हरसिंगार को महादेवी ने भिन्न २ माना है यद्यपि दोनो एक ही के नाम है।" —शिवमंगल सिंह सुमन

४. हरसिंगार पुष्प रात्रि के अन्तिम पहर मे झड़ा करता है। इसलिए उपर्युक्त वर्णन रात्रि का ही है।

५. महादेवी प्रभावान्विति के लिए शब्दो के दुहरे प्रयोग करने मे सिद्धहस्त है। पुलक, सिहर, भर, झर के दुहरे प्रयोग एक विशेष प्रभाव की सृष्टि करते है।

६ 'शिथिल······झर"—यहां ध्वनि शैथिल्य है।

[पिक की मधुमय बंशी बोली।]

शब्दार्थ—पाटल=ललाई मिला हुआ पीला रंग तथा फूल विशेष।
अरुण=सूर्य, लाल।

अर्थ—आज प्रकृति पर विशेष मादकता छाई हुई है। केवल मै ही नही, सारी प्रकृति भावोद्दीप्त हो उठी है। देखो ना कि कोकिल अनायास ही कूक उठी मानो कही बंशी बज उठी हो जिसे सुनकर हर्षोन्माद मे भोली भ्रमरी ताल देकर नाचने लगी। ओससिक्त लाल 'पाटल अधकार पर अपनी धूलि की रोली बिखेरने लगा—ऊषा की लालिमा का अंधकार पर प्रभाव विस्तार होने लगा। रजनी-नायिका अपनी गोद में निर्मल सरोवर रूपी दर्पण को रख और उसमे अपना मुख निहार अपनी नील-कमलवत् आँखों को आँजने लगी,। प्रकृति के इस वैभव-विलास को देखकर मेरे नेत्र आज क्यो भर आए है ?

विशेष १. 'पिक की······भोली'—कोकिल की काकली ने प्रभात काल की सूचना दी। भ्रमरी इसलिए प्रसन्न हो उठी क्योंकि अरुणोदय के साथ कमलो के रसपान करने का सुअवसर मिलेगा व भ्रमर से मिलाप होगा। वस्तुतः अलिनी से अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती हुई नायिका का आभास होता है। यदि पिक को यौवन का सन्देश-

वाहक माना जाय तो भोली अलिनी में अज्ञात यौवना नायिका की प्रतीति होती है ।

२. 'अरुण सजल······रोली'—रूपक अलकार की दृष्टि से इसका अन्यार्थ और भी सार्थक है—सूर्य रूपी पाटल पुष्प अंधकार पर कोमल पराग रूपी रोली (लालिमा) बिखेर रहा है ।

३. 'मृदुल अंक·····इन्द्रीवर' ······ इस पंक्ति मे प्रातःकाल सरोवर मे कमलो का खिलना व्यञ्जित है ।

४. 'नाच ··· भोली'—अभिधेयार्थ नृत्य करना तथा लक्ष्यार्थ उल्लसित होना दोनो मे सौन्दर्य है । 'नाच उठना' मुहावरा है ।

५. 'दर्पण सा सर' मे उपमा, 'दृग-इन्द्रीवर में रूपक तथा 'मृदुल अंक' मे रुपकातिशयोक्ति है । अतएव इन सभी अलकारो से संश्लिष्ट समासोक्ति समग्र छंद में है ।

[आँसू बन-बन तारक आते····]

शब्दार्थ—वानीर =बेत या सरकंडा । विहाग=राग विशेष । उन्मन=उद्विग्न ।

अर्थ—कवयित्री अपनी वियोगावस्था को प्रकृति के माध्यम से प्रकट करती हुई कहती है—तारे साश्रु होकर (ओस के रूप मे) फूलो पर समासीन हो रहे है । बेत के वन भी (पवन से) कांपते हुए व्याकुल कंठ से करुण विहाग राग गा रहे है। निशि की नीरवता मे नीद उद्विग्न होकर मानो इधर-उधर घूम रही है और अनेक प्रकार के भावो को जगाकर लौट रही है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे निद्रा स्वप्न-सचित करने ही आई थी और यही करके वह निद्रा की घड़ी समाप्त हो रही है ।

विशेष—घोर निद्रा मे स्वप्न नही आते, 'उन्मन' निद्रा मे ही स्वप्न

आते है। 'निद्रा उन्मन' में विशेषण विपर्यय आलकार है क्योकि व्यक्ति 'उन्मन है, निद्रा नही।

जीवन जल कण से निर्मित सा

शब्दार्थ—पाहुन=अतिथि।

अर्थ—जीवन (जल, मानव जीवन) जलविंदुओ अथवा आँसुओ से निर्मित है। यह ससार जलयुक्त मघ के समान है, जिसमें मानव जीवन ही जल है, आकर्षक किंतु क्षणभगुंर आकाक्षाओ रूपी इन्द्रधनुषसे जीवन रूपी मेघ चित्रित है। मेघ के समान ही यह धूमिल—दु:खमय—है। जिस प्रकार मेघ पुलकित होकर घिरते तथा सकरुण होकर घुल जाते है, वरस पडते है और उनका यही क्रम उन्हे चिर नूतन वनाए रखता है, वैसे ही मेरी आवस्था है।

हे प्रिय पाहुने, मेरे पलक-पाँवडे तुम्हारे स्वागत मे विछे है। तुम इन पर चरण रखते हुए इस दु:खमय अथवा मेघाच्छादित संसार मे विद्युत के समान आओ—दुखी जीवन मे सुख का प्रकाश वनकर आओ।

विशेष—'जीवन' मे श्लेष है। 'पलको मे पग धर-धर' मे परिवर्तित मुहावरा है।

अवतरण—यदि प्रियतम से क्षण-भर का स्वप्न मिलन ही हो जाता तो यह मिलन, साधिका को इतना सशक्त बना देता कि वह अपने अभिशप्त जीवन को वरद बना संसार के क्रन्दन को भी धो सकती।

[तुम्हें बाँध पाती सपने में !]

अर्थ—हे प्रियतम, यदि मैं क्षण-भर के लिए और वह भी स्वप्न मे—प्रत्यक्ष जीवन मे नहीं—तुमसे मिल सकती तो मानसिक उपलब्धि से उस एक लघु क्षण में मेरी जन्म-जन्मान्तरों की प्यास बुझ जाती।

विशेष—जबसे आत्मा परमात्मा से विलग हुई है, तबसे वह आकुल-व्याकुल है, प्यासी है।

[पावस-घन-सी उमड़ बिखरती।]

अर्थ—वह पल भर का स्वप्न-मिलन मुझे इतना सशक्त बना देता है कि मैं वर्षा के मेघो के समान उमड और बिखरकर (बरसकर) सब जग को हरीतिमा प्रदान करती—सबको अपना समझकर उस मिलन-जन्य आनन्द का आस्वादन कराती। जिस प्रकार शरद-काल की ज्योत्स्ना-स्नात रजनी सब ओर व्याप्त, पृथ्वी-रूप, होकर ससार के लिए अत्यन्त मधुर सिद्ध होती है, उसी प्रकार मैं भी सर्वत्र शुभ्रता-सात्विकता तथा सुख-आनन्द का प्रभाव-विस्तार कर देती। मेरे लघु आँसुओ मे भी विस्तृत-विश्व के दुखो को धोने की सामर्थ्य आ जाती—उस क्षणिक मिलन से मेरी प्यास ही न मिटती, मेरा विषाद ही दूर न होता, अपितु असीम के संस्पर्शों से मैं भी असीम हो जाती और विश्व का विषाद धुल जाता।

विशेष—प्रियतम से मिलन क्या है मानो अपना आत्म-विस्तार करना है, समग्र संसार के साथ एक रूप होना है। मेरे-तेरे की भावना ही तो ससीमता है—माया है। प्रिय-मिलन से यह माया दूर और आत्मा विस्तृत हो जाती है, और वेदना के आँसू संवेदना (करुणा) के आँसू बन जग के विषाद को धोने मे समर्थ हो जाते है।

शरद निशा की उपमा सार्थक है। अथर्व वेद में रात्रि का स्वरूप इस प्रकार व्यक्त हुआ है।

भद्रासि रात्रि चमसो नविष्टो विश्व गोरूप युवतिर्बिभर्षि।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रतिल्य दिव्यानक्षत्रारामपुमुक्थाः

अर्थात् "हे विश्रामदायिनी कल्याणी। तू पूर्ण पात्र के समान (शान्ति से भरी हुई) है। सब ओर व्याप्त होकर पृथ्वी रूप हो गई है। हे सब पर दृष्टि रखने वाली स्नेह-शीले रात्रि—तूने उज्ज्वल नक्षत्रो से अपना शृंगार किया है।"

[मधुरराग बन विश्व सुलाती]

अर्थ—जैसे कोई माता अपनी सन्तान को मधुर लोरियो द्वारा सुलाती है उसी प्रकार उस मिलन-जन्य आनन्दानुभूत आत्मा से ऐसा मधुर मादक गीत फूटता है कि सारा संसार वशीभूत हो शान्ति पाता और मेरी प्रफुल्लता से अणु-परमाणु सुरभित हो उठता। वह क्षणिक किन्तु दिव्य मिलनानुभूति मेरे वियोग-जर्जर जीवन को इतना सशक्त बना देती कि मै हँसते-हँसते—सहज-भाव से—संसार के हाहाकार को अपने में समेट निःशेष कर देती।

[सबकी सीमा बन सागर सी।]

अर्थ—मेरा यह लघु-क्षुद्र व्यक्तित्व सागर और प्रकाश की लहर के समान असीम-विराट बन जाता, और मै ही सबकी सीमा बन जाती। प्रत्येक वस्तु का चरम विकास ईश्वर के समान मुझ में होता। उस तारो

भरे वैभव-वलित आकाश को वाँच अपने नयनों में समा लेती—असीम को लेती—अथवा स्वयं असीम होकर सवको अपने में समालेती।

विशेष—उपमाएँ अत्यन्त सार्थक है—'तारोंमय······में'—यहाँ 'अधिक अलंकार हैं। रहस्यवादियों का यह प्रिय अलकार है। ससीम में असीम का परिचय इससे भली-भाँति दिया जा सकता है महादेवी ने इस अलंकार का प्रचुर प्रयोग किया हैं!

[शाप मुझे वन जाता वर-सा।]

अर्थ—जन्म-जन्मान्तरो से अभिशप्त (दुखी) जीवन मधुर वरदान वन जाता। यह पतझड-सा वैभव-हीन तथा ह्रास-जर्जर जीवन चिर वासंतिक वैभव का रूप धारण कर लेता। उस प्रिय-मिलन के जन्य उत्तेजना अथवा स्पंदन में अनेक स्वर्गों का सुख समा जाता—उस मिलन के एक क्षण के आधार पर मेरा मन न जाने कितने आनन्दमय स्वर्गों की सृष्टि करता।

[सवसे कहती अमर कहानी।]

अर्थ—प्रियतम से एक क्षण की मिलन कहानी, मेरे जीवन की कहानी वन जाती। प्रत्येक श्वास इस अमर कहानी को ही दुहराता। एक-एक क्षण उसी मिलन-वेला की स्मृति वन उठता और इसलिए काल के पथ पर अमिट पद-चिन्ह छोड जाता। सैकडों मोक्षो के आनन्द उस मिलन-वन्धन के लघुतम क्षण में ही सन्निहित हो जाते। (अथवा र के दुखो को दूर करने का एक-एक वन्धन मुझे मोक्ष के समान प्रतीत होता।)

विशेष—महादेवी के अनुसार "अलौकिक रहस्यानुभूति भी अभिव्यक्ति में लौकिक हो जाती"—वैसे तो प्रायः सभी कविताओ में ऐसा हुआ है किन्तु यहाँ स्थूल-पार्थिक शृंगार परिचायक शब्दावली—प्यास

बुझाना, बाँध लेना, प्राणो का स्पन्दन (excitement) स्वप्न-मिलन (मनोवैज्ञानिक जिसे wish fullilment कहते है) आदि का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। और क्योकि "रसानुभूति प्रत्यक्ष तथा वास्तविक अनुभूति से सर्वथा पृथक कोई अन्तवृंत्ति नही बल्कि उसी का एक उदात्त और और अवदात स्वरूप है," इसलिए ऐसी कविताओ मे काव्य गुण, रस अधिक होता। नीरजा की आलौकिक रहस्यानुभूति मे भी लौकिक रूपको की रुचिरता है।

यह कविता इस बात का सजग प्रमाण है कि असीम मे आश्रय खोजने वाली साधिका, विश्व-मगल को भी उतना ही महत्व देती है—ससार के क्रन्दन की ओर भी सजग है। यही नही, बल्कि प्रिय-मिलन, और विश्व के साथ एक रूप होना, दानो एक ही बातें है।

---

१. रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि

: ५ :

(अवतरण)—प्रियतम की सुधि जन्य आवेगाधिक्य से साधिका की स्वाभाविक गति-अभिव्यक्ति रुक सी गई है।

[आज क्यों तेरी वीणा मौन ?]

अर्थ—आज अनायास ही गायिका तेरी वीणा मौन क्यो हो गई है ? आज जीवन की स्वाभाविक-गीत स्थिति मे विराम सा आ गया है। किसी की स्निग्ध-सजल स्मृति तुम्हारे प्राणो में मधुर पीडा वन के रम गई है और शरीर निश्चेष्ट सा हो गया है—हाथ थक गए है, हृदय की धडकन भी वन्द सी हो गई है मानो हृदय स्तब्ध होके रह गया है।

विशेष—रश्मि की इन पक्तियो से तुलना कीजिए। अर्थ स्पष्ट हो जायगा—

कसक कसक उठती सुधि किस की ?
थकती सी गति क्यों जीवन की ?
क्यो अभाव छाये लेता
विस्मृति-सरिता के कूल

[झुकती आती पलकें निश्चल]

अर्थ—ऐसा प्रतीत होता है कि किसी की स्मृति मे सारी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गई है। नेत्र मानो उस स्मृति की मादकता से झुक गए है और नीद के वशीभूत हो रहे है। अनेक प्रकार के स्वप्नो से पुतलियाँ चित्रित प्रतीत होती है और जो असख्य भाव अभी तक हृदय में प्रसुप्त थे वे मानो उद्‌बुद्ध होकर अपार आँसुओ के सागर के रुप म उमड आए है।

[वाहर घन-तम भीतर दुख-तम]

अर्थ—वाहर मेघों का घना अन्धकार छाया है— इस समस्त विश्व मे दुख के वादल छाए है। विश्व दुखमय ह और तेरे हृदय में भी पीडा का अन्धकार है। जैसे वाहर मेघो मे क्षण-क्षण विजली चमक रही है और वही उसकी शोभा है उसी प्रकार तेरे हृदय में प्रियतम की स्मृति रह-रह कर कौध जाती है वही सुखाशा है। किस की करुण स्मृति ने तेरे जीवन को वर्षा की सजल रात वना दिया है ?

विशेष—१ वाहर घनतम—यहा वौध्द दर्शन का प्रभाव है। यही कविता न० ३ मे भी है—'सजल मेघ सा धूमिल है जग।'

२. यहाँ कवयित्री अन्तर्जगत का वाह्य जगत मे और वहिर्जगत का अन्तर्जगत मे प्रतिविम्व देखती है।

: ६ :

अवतरण—प्रियतम से अभिसार के लिए सखी विरहिणी नायिका को साज-शृंगार करने को कह रही है।

[शृंगार कर ले री सजनि]

शब्दार्थ—क्षीरनिधि=दुग्धसागर । ऊर्मियों=लहरों। रजत=चाँदी ।

अर्थ—हे सजनी ! तू भी प्रियतम से मिलने के लिए शृंगार कर ले। तनिक प्रकृति को तो देखो ! उसने प्रियतम से मिलनोत्कंठा में अपना घरबार कैसा सजा लिया है ! आकाश रूपी सागर में नूतन दुग्धसागर की चचल लहरों के समान शुभ्र-धवल तथा हलके-रुपहले शरद ऋतु के मेघ तथा फेनयुत वुदबूद् रूपी मोतियों की लड़ियों के समान अनन्त तारे तैर रहे हैं। रजत-रश्मियों का घूँघट डाल कर अवनि-नायिका भी प्रिय समागम की उत्कण्ठा में अनायास सिहर उठती है।

विशेष—(१) उपमा और रूपक की रुचिरता है।

(२) 'रजत झीने मेघ सित' में रजत विशेषण सार्थक है। यहाँ रजत से अर्थ होगा चाँदी के समान श्वेत-स्वच्छ। ऐसे विशेष्य विशेषण मूल उपमान भाषा को जगमगा देते हैं ।

(३) साहित्य दर्पण की इन पंक्तियों से तुलना कीजिए:—

'नेद नभो-मण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारक नव फेन भंगाः ।"

[हिमस्नात कलियों पर जलाये !]

शब्दार्थ—हिमस्नात=ओसयुक्त । अलिनि=भ्रमरी ।

अर्थ—ओसकणो से धुली कलियो पर जुगनू दीप के समान टिमटिमा रहे हैं (मानो गगाजल से धुले पात्र मे कोई वत्ती जल रही हो) समीर ने मकरद को रास्तो पर विखरा कर मानो पथ को लीप दिया है। कमल के क्रोड मे वैठी भ्रमरी प्रियतम के स्वागतार्थ उल्लास मग्न होकर गीत गा रही है ।

विशेष—विश्वम्भर मानव' इन पंक्तियोके सम्बन्ध मे लिखते है—'प्रकृति को तो देखो, समागम की उत्कण्ठा मे उसने अपने को और अपने घर को कैसा सुसज्जित किया है ? स्थान लिपा-पुता, दीपक जले हुए, सगीत का आयोजन और स्वय भीतर-वाहर से प्रसन्न पर कैसी शर्मीली वन गई है।" इस प्रकार स्वागत के लिए भारतीय सभ्यता के अनुसार जो कुछ होता आया है—आगन लीपना, अर्चना के लिए दीपक जलाना तथा मगलगान—वही इन पक्तियो मे वर्णित है। महादेवी प्रकृति से मांगलिक सामग्री का चयन सात्विक सुरुचि से करती है ।

'तू स्वप्न सुमनो से······मदिर ध्वनि ।

अर्थ—अतिथि के स्वागत के लिए अतिथेय को मलिन-वेश मे न होकर मिलन-वेश में होना चाहिए । इस लिए हे सखी । तू मधुर कामनाओ के पुष्पो से अपने शरीर को सजा ले । अनन्त जन्मो की मिलन-साध रुपी अंजन से नेत्रों का शृंगार कर और उपहार स्वरुप अपने विरह को लेकर चल । और सखी ! प्रिय के स्वागत के लिए जो गान गाए जायंगे उनकी ध्वनि ही तुम्हारे नूपुरो की मधुर ध्वनि वन जाएँ ।

विशेष—(१) प्रथम पंक्ति में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह व्यक्त होता है कि अतिथि के आगमन का हर्ष आतिथेय पर प्रकट हो रहा है ।

(२) पहली पक्तियो की तरह यहां भी महादेवी ने कितनी सौम्य-

सात्त्विक सुरुचि का परिचय दिया है। अलौकिक प्रियतम को रिझाने के लिए अलौकिक-अनूठे उपकरण ही चुने हैं। ऐसे वर्णनों से किसी प्रकार की ऐन्द्रिय उपभोगता की शंका निर्मूल सिद्ध होती है।

[इस पुलिन के अणु आज हैं।]

शब्दार्थ—पुलिन=रेतीला किनारा। निमिष=पल। मनुहार=मनाने के लिए की जाने वाली विनती।

अर्थ—तुम्हारे मार्ग का प्रत्येक कण भूली हुई पहचान (अर्ध विस्मृति) के समान है— प्रत्येक कण अतीत स्मृतियो को जागृत कर देता है। प्रति क्षण प्रणय की अनुनय-विनय की भाँति वरदान बन कर आता है। प्रत्येक पल में प्रेम के अनुरोध की शक्ति और वरदान का सुखाकर्पण है। अभिसरण पथ बड़ा कठिन है क्योकि पथ अज्ञात है और प्रिय भी दूर है, फिर भी वसन्त रजनी (यौवन-विलास) मे भीगती हुई अविश्रान्त चली जा।

विशेष—'मधु' वसन्त का तथा 'रजनी' विलास की प्रतीक हैं।

अवतरण—आज न जाने किस अज्ञात की मधुर अनुभूति से जीवन का सारा वैषम्य समाप्त हो गया है। सुख-दुख, जीवन-प्रलय सब समान भासित हो रहे हैं।

[कौन तुम मेरे हृदय मे]

शब्दार्थ—निलय=घर, कमरा। चितेरा=चित्रकार।

अर्थ—मेरे हृदय मे न जाने किस अज्ञात इष्ट का वास है? यह कौन अज्ञात-अलक्षित है जिसकी मधुर अनुभूति नित्य मेरी पीड़ा मे भी माधुर्य का संचार कर रही है और जो, मेरे रूप-दर्शन के प्यासे नयनो मे अनायास ही आँसू बन कर उमड़ रहा है?—प्रिय के अभाव मे नेत्र आँसू बहाते रहते हैं। निद्रा के निभृत (एकांत) निलय मे कौन चित्रकार मधुर स्वप्नो का चित्रांकन करता रहता है—मेरी अन्तश्चेतना मे कौन भविष्य की मधुर कल्पनाओ की सृष्टि करता रहता है?

विशेष—(१) ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमिका के जीवन का प्रत्येक क्षण प्रिय-मिलन के लिए आविर्भूत हो रहा है।

(२) नन्द दुलारे वाजपेयी के शब्दो में, यह पद प्रसाद जी के 'कौन हो तुम भूले हृदय की चिर खोज ?' का स्मरण दिलाता है। यद्यपि महादेवी और प्रसाद की रहस्य भावना में यह स्पष्ट अन्तर है कि महादेवी जी का झुकाव सदैव करुणा और भक्ति की ओर रहता है, जब कि प्रसाद जी प्राय तादात्म्य (वही तू हूँ) का सकेत करते रहते हैं।

[अनुसरण निश्वास मेरे]

अर्थ—मेरा यह जीवन—जो श्वास-निश्वास का क्रम है—निरन्तर किसकी ओर उन्मुख है। अज्ञात-अलक्षित की खोज ही इसका प्रमुख कार्य है। मेरी वहिर्गत आँखे निरंतर अज्ञात इष्ट को खोजने के लिए ही जाती है। और हृदय मे अंकित किसी के चरण चिह्नों को चुगने के लिए—हृदयस्थ प्रियतम की स्मृतियो का आनन्द लेने के लिए—ये वाहर गई हुई आँखें वार-वार लौटती रहती है। न जाने किस अज्ञात इष्ट ने श्वासों के पाश में मुझे—मेरी आत्मा को—वन्दी वनाया किंतु विजयी होने पर भी वह मेरे प्रेमिक हृदय के पाश मे वन्दी वनकर रह गया है—विजयी भी विजित होगया है।

[एक करुण अभाव मे चिर तृप्ति]

अर्थ—प्रियतम के वेदना-वलित अभाव मे भी—क्योकि इस अभाव मे प्रियतम की स्मृति सचित रहती है—चिर तृप्ति का कोप है। इस विरह जन्य दुःख का एक-एक क्षण सकडो निर्वाणो के वरदान का विधान करता है। मैने पीड़ा के साथ उस अनत निधि, इष्ट, को पा लिया, अतएव यह व्यापार अपने आप मे सौभाग्यशाली रहा।

विशेष—१. जयशंकर प्रसाद जी, 'झरना' की 'विपाद' शीर्षक कविता मे कहते है —

"किसी हृदय का यह विषाद है
छेड़ो मत यह सुख का कण है।"

२. 'करुण अभाव' मे विशेपण विपर्यय अलकार है। विरोधाभास और 'अधिक' अलंकार भी स्पष्ट है।

३. 'पा लिया······श्य मे'—साध्य गीत' मे भी कवयित्री ने कहा है कि उसने अश्रु-मोतियो से प्रेम को खरीद लिया है—

नयन की नीलम तुला पर।
मोतियों से प्यार तोला॥

[गूंजता उर में न जाने]

अर्थ—जिस प्रकार दूरागत सगीत लहरी मे एक रहस्यात्मक आकर्षण तथा माधुर्य होता है उसी प्रकार हृदय को न जाने किसकी रहस्यात्मक मधुर अनुभूति आकर्पित कर रही है। यह कैसा विचित्र विरोधाभास है कि आज निज को खोकर—सर्वस्व समर्पण करके भी—मुझे अभाव नहीं अपितु इसके विपरीत मेरी चिर खोज का लक्ष्य, मेरा खोया हुआ प्रियतम, मुझे प्राप्त हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो विरह की पतझडमयी दुखद रात्रि मिलन के सुखद बसन्त-प्रभात की अरुणिम रश्मियो मे अपनी कालिमा धोकर उपस्थित हो गई है—प्रियतम की मिलनानुभूति के कारण वेदना भी मधुर हो गई है।

विशेष—'विपरीत सा' का यह अर्थ भी हो सकता है कि ऐसी वस्तु की प्राप्त जिसे पहले कभी प्राप्त न किया हो।

२—इस 'दूर के सगीत सा क्या' कहने मे अस्पष्टता तथा अतीत स्मृतियो के धुँधले स्वरूप का आभास दिया गया है। भाषा ने भाव को ऊपर उठा दिया है।

रश्मि में भी इसी उपमान का प्रयोग हुआ है पर रश्मि और नीरजा की स्थिति मे अन्तर स्पष्ट है—

तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है ?

नीरजा मे 'उस पार' की जिज्ञासा के स्थान पर 'उर मे' की अनुभूति है।

३ विरोधाभास और रूपक अलकार है।

[तिमिर पारावार मे आलोक प्रतिमा]

शब्दार्थ—घनसार=कपूर, जल। अकम्पित=स्थिर।

अर्थ—यद्यपि मेरे प्राणों में विरह-जन्य दुख रूपी अन्धाकर का तूफान उमड रहा है फिर भी प्रियतम के प्रति मेरे प्रेम-विश्वास की दीपशिखा निष्कम्प-निश्चल है—कठिनाइयाँ मेरे अनन्य अनुराग पर कुछ प्रभाव नही डाल सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी विरह ज्वाला से मधुर कपूर का सौरभ बरस रहा है—ज्वाला सुखद-शीतल प्रतीत हो रही है। आज किसी की अनुपम अनुभूति ने मेरे हृदय मे ऐसी समस्थिति, संतुलित अवस्था, ला दी है कि जीवन और प्रलय दोनो एक रूप तया मधुर हो गए है।

[मूक सुख दुख कर रहे]

अर्थ—मेरा मौन व्यक्तित्व सुख और दुख दोनो को समान रूप से ग्रहण करता है। इससे मेरे व्यक्तित्व का निखार-शृंगार हो रहा है। जिस प्रकार कोई मानी नायक अपनी प्रियतमा की विनम्रता से पसीज-प्रसन्न होकर प्यार करने के लिए आतुर हो उठता है उसी प्रकार मानो आज अहंकारी—जो पहले उपेक्षा किया करता था—नभ (स्वर्ग) भी बादलो के रूप मे उमड़ घुमड कर पृथ्वी पर झुक आया है। मेरा विनम्र आत्म समर्पण सफल हो रहा है। आज सृष्टि-नायिका भी प्रसन्नतापूर्वक अभिसार करने जा रही है—किसी प्रकार की विषमता नहीं रही।

विशेष—१. 'मूक सुख दुख' मे विशेषण विपर्यय अलंकार है। साथ ही नीचे उत्प्रेक्षा द्वारा समासोक्ति को अनुप्राणित किया गया है।

श्री रामदहन मिश्र इसकी व्याख्या इस प्रकार करते है। —"इसमे शृंगार सा और प्यार-सा दो उपमान है। यहाँ के प्रश्नवाचक 'क्या' यही सूचित करते है। यह भी अर्थ किया जा सकता कि यथार्थ शृंगार न होते हुए भी यह वैसा ही है, यथार्थ प्यार न होते हुए भी प्यार ही जैसा कुछ है सुख-दुःख कुछ कह रहे है, स्वर्ग कुछ दे रहा है वे वैसे ही है जैसा कि शृंगार-जैसा कि प्यार। प्रत्येक मे उपमेय का लोप है।

२. डा० रामकुमार वर्मा की 'चित्र रेखा' की निम्न पंक्तियों से इस कविता की तुलना कीजिए —

छिपा उर में कोई अनजान !

खोज खोज कर साँस विफल, भीतर आती जाती है
पुतली के काले बादल में वर्षा सुख पाती है,
एक वेदना विद्युत सी खिच खिच कर चुभ जाती है,
एक रागिनी चातक स्वर में सिहर सिहर गाती है।

कौन समझे समझावे गान ?
छिपा उर में कोई अनजान।

अवतरण—बाहर से आनन्द की खोज करना एक प्रवंचना अथवा मिथ्या प्रयास है। मानव जीवन की सार्थकता अपने भीतर के आनन्द को खोज निकालने मे है—मानव जावन का श्रेय आत्मानन्द की उपलब्धि ही में निहित है।

[ओ पागल ससार]

अर्थ—(अपने प्रस्तुत अर्थ अथवा वाच्य रूप मे) दीपक की अंधकार के प्रति उक्ति है। दीपक कहता है हे शीतल—ज्वाला-साधना से हीन—अंधकार के ससार तू जलने का उपहार न माँग। प्रकाश की अभ्यर्थना करके तू जलने का वरदान न माँग क्योकि तू शीतल है, जलना तेरा मूल गुण नही।

[करता दीप शिखा का चुम्बन]

अर्थ—तू जिस दीपक की याचना (माँग) कर रहा है वह दीपक शिखा का स्पर्श करने मात्रा से ही ज्वाला मे प्रदीप्त हो उठता है। अतएव जिस प्रकाश के प्रति तुझे इतना अनुराग है, वह पल भर मे तुम्हें भस्म कर देगा। प्रकाश से प्रेम करना जलने का सौदा है।

विशेष—यहाँ 'अंधकार का ससार', पार्थिव जीवन तथा 'प्रकाश' चैतन्य आनंद का प्रतीक है। अतएव बाहर से आनन्द की खोज करना पार्थिव जीवन के लिए श्रेयस्कर नही।

[दीपक जल देता प्रकाश भर]

अर्थ—दीपक का अपना धर्म जलाना है इस लिए जब वह जलता है समस्त वातावरण प्रकाशित हो उठता है। पर यदि घर—जिसका

धर्म जलना नही—दीपक की ज्वाला धारण करने का प्रयास करे तो जल जायगा। अतएव इस दीपक को अकेले ही जलने दो।

[जलना ही प्रकाश उसमें सुख]

अर्थ—दीपक जलकर प्रकाश देता है और यह प्रकाश सुख का प्रतीक है। पर बुझने का परिणाम है अंधकार जो दुःख का प्रतीक है। अतएव जिस दीपक का सहज धर्म सुख है उसका विपरीत गुण वाले से अनुकूल सम्बन्ध कैसे हो सकता है? इसलिए दीपक ठीक ही कहता है कि अधकार तुझ मे जलन नही, तू बुझा हुआ है और दुःख स्वरूप है—मेरे गुणो के प्रतिकूल है तब तेरा-मेरा सम्बन्ध कैसा।

[शलभ अन्य की ज्वाला से मिल]

अर्थ—दीपक का जलना ही प्रकाश दे सकता है सबका नही। जलना सभी का कर्म नही है। पतगे का उदाहरण स्पष्ट है। उसने दूसरे के धर्म में हस्तक्षेप किया इसलिए सर्वस्व गँवा बैठा। परन्तु फिर भी प्रकाश न दे सका।

विशेष—शलभ को केवल दृष्टान्त के रूप मे लिया गया है।

[अपना जीवन दीप मृदुलतर]

अर्थ—अतएव यदि तुम अपने जीवन को दीप तथा स्नेह (घृत, प्रेम) सिक्त (द्रवित) हृदय को वत्ती बना के साधना अथवा विरह की ज्वाला जला लो तो तुम्हारे जीवन से भी प्रकाश प्रसरित होगा जैसे दीपक से होता है।

विशेष—१. यह जीवन बाहर से आनन्द की खोज करता है जिस से विफलता ही हाथ आती है। अपनी आत्मा में ही विरह-साधना का दीप जलाने से अपना जीवन और यह संसार दोनो उज्ज्वल हो सकेंगे—बाहर से प्रकाश लेकर नही।

२. अपने वाच्यार्थ मे यह कविता दीपक की अंधकार के प्रति उक्ति है और व्यंग्यार्थ मे आत्मा की पार्थिव जीवन के प्रति।

३. कबीर से तुलना कीजिए—

पद जोरे साखी कहै साधन परिगई रौस
काढ़ा जल पीवे नहीं, काढि पियन की हौस

४. इस कविता में मनोवैज्ञानिक आलोचक मनोविज्ञान मे वर्णित libido का वर्णन पाएंगे जिसके अनुसार आनन्द अपने मे ही स्थित है। अत. आनन्द की प्राप्ति के लिए बाहर खोज करना व्यर्थ है।

का प्रयास करता है। पवन भी सहानुभूतिशील होकर आहे भरता हुआ इस की व्यथा-कथा अथवा कुशल-क्षेम पूछता है।

विशेष—समय के अनुसार कमल पर ओस आती है तथा वायु भी आकर मानो उसका समाचार पूछती है। यहाँ भी जीवन विरह का कमल है।

[जो तुम्हारा हो सके।]

अर्थ—विरह-जल से उत्पन्न मेरे जीवन कमल को हे निरुपम प्रियतम यदि स्वीकार कर लो तो तुम्हारी हास्य रूपी प्रातःकाल से यह प्रफुल्लित हो उठे—तुम्हारे दर्शनो से यह जीवन कृतार्थ हो जाय।

२. यहाँ 'श्यामल······कोमल शब्दो की कोमलता, बालो की कोमलता से किसी प्रकार कम नही।

[सौरभ भीना झीना गीला]

शब्दार्थ—दुकल=दुपट्टा।

अर्थ—उक्त सुन्दरी की वसन-सज्जा का वर्णन करते हुए कवयित्री कहती है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो वह शरीर पर अत्यन्त सुरभित, बारीक तथा अंजन के समान काली-कोमल साडी पहने हुए है जिसके हिलने से रास्ते मे (स्नान करके जिस पथ पर चलती है) जुगनू रूपी सुनहरे फूल झडते रहते है। जैसे सद्य.स्नाता के अगो से, आभूषणरूप मे धारण किए फूल झडते है उसी प्रकार जुगनू। उसकी तेजस्विनी दृष्टि जहाँ कही पडती है वही—बिजली के कौधने के रूप मे—दीपक जल जाते है। मानो बिजली का कौधना ही उसका दृगपात है।

विशेष—१. 'झरझर' से जुगनुओ की अधिकता व्यजित हो रही है।

२. वीप्सा अलकार का प्रयोग सुन्दर है।

[उच्छ्वसित वक्ष पर चचल है]

शब्दार्थ—बकपाँत=बगुलो की पक्ति। अरविन्द=कमल। मलयज बयार=मलय पर्वत से आनेवाली सुगन्धित वायु। केकी-रव=मोर की ध्वनि।

अर्थ—उमडती मेघमाला के रूप मे आन्दोलित वक्ष पर बगुलों की पक्ति रूपी कमलो का हार है। सुरभित वायु मानो उस सुन्दरी की निश्वासे है जो पृथ्वी के ससर्ग से ही मलय पवन का रूप धारण कर लेती है अथवा वायु की तरगें उसके निश्वासो की सौरभ ग्रहण करके मलय-पवन बन जाती है। मयूर-ध्वनि रूपी मधुर नूपुर-ध्वनि

को सुनकर –और इस रूप मे उसके आगमन का सकेत पाकर—संसार की व्याकुल प्यास जाग उठती है।

विशेष—१. 'केकी-रव'—काले-काले वादलोको देखकर मोर नाचा ही करते है। २. 'जगती जगती' मे यमक अलकार है।

[इन स्निग्ध लटो से छा दे तन।]

अर्थ—(अब तक चित्र शृगार का था अब वात्सल्य का चित्र है) अपने सजल मेघरूपी स्निग्ध वालो से, दुख से सतप्त जगरूपी उदास शिशुको छाया दो और इसे अपनी पुलकित क्रोड—मेघमाला के घिराव—मे ले लो। इस जग रूपी शिशु के सतप्त मस्तिष्क पर प्रसन्न होकर शीतल चुम्वन दो और इस प्रकार इस जग-शिशु को प्यार करके वहला दो—इसकी पीड़ा तथा सतप्तता को अपनी वर्षा-वत्सलता से हर लो।

विशेष—१. "प्रकृति का नारी व्यक्तित्व न केवल सौन्दर्यमय है वरन् वात्सल्यपूर्ण और कल्याण-युक्त भी है······वर्डस्वर्थ आदि प्रकृति-प्रेमी कवियो ने प्रकृति के सौन्दर्य से अभिभूत होते हुए उसका कल्याण-कारी तथा सुखद प्रभाव मानव स्वभाव पर देखा था। भारतीय मस्तिष्क नारी के वात्सल्यमय रूप की ओर विशेष रूप से आकर्षित रहा है, इसलिए हिन्दी के छायावादी कवियों ने प्रकृतिरूपी नारी के सत्प्रभाव मे उसके वात्सल्य रूप का सामजस्य कर दिया है। इस सम्बन्ध मे वह उषा, पृथ्वी आदि सम्बन्धी वैदिक भावना से भी प्रभावित कहा जा सकता है।"[1]

२. भाषा ने भाव को ऊपर उठा दिया है। "दुलरा देन" तथा वहला देना' के "ना" मे आतरिक अनुनय-विनय प्रकट हो रहा है और इसमें वालकोचित अनुरोध का माधुर्य है।

---

१. डा० शैलकुमारी

३. इस कविता का प्रारम्भ शृंगार से और अन्त वात्सल्य में हुआ है। रस परिपाक की दृष्टि से यह विचारणीय है।

४. समस्त कविता में विशेषकर प्रथम दो पदों में भाषा की मंजुलता-मसृणता चरम सीमा पर है। 'श्यामल-श्यामल' 'कोमल कोमल,' —बस ऐसी ही महादेवी की भाषा है। प्रकृति के मानवीकरण का सौंदर्य तो है ही।

: १२ :

अवतरण—रहस्यवाद अपने मूल रूप मे अद्वैतवाद से सम्बन्धित है। "रश्मि" मे महादेवी ने लिखा है :—

"मैं तुम से हूँ एक, एक है जैसे रश्मि प्रकाश।"

अर्थ—नीरजा मे यह स्वरूप और भी स्पष्ट है। आत्मा और परमात्माका परिचय तो सनातन ही है। इस कविता मे कवयित्री को यही आग्रह है कि जब प्रेयसी-प्रियतम, आत्मा परमात्मा अभिन्न है—दोनों का व्यक्तित्व एक दूसरे मे ओत-प्रोत है तो कुछ परिचय देना व्यर्थ है।

[तुम मुझ मे प्रिय ! फिर परिचय क्या ?]

शदार्थ—तारक=पुतलियाँ। संसृति=ससार। पुलक=प्रसन्नता-जन्य रोमाच।

अर्थ—हे प्रियतम तुम मेरे रोम-रोम मे बसे हुए हो। मेरे नेत्र तारक (पुतलियो) में तुम्हारी छवि व्याप्त है—उनमे जो ज्योति है वह तुम्हारी ही कान्ति है। मेरे प्राणो मे जो स्पंदन है, वह तुम्हारी स्मृति का ही स्पदन है। मेरी पलको के उत्थान-पतन मे तुम्हारी निःशब्द चाल है। तेरे प्रेम के कारण इस छोटे से हृदय मे प्रसन्नता-जन्य रोमांचो का ससार—अत्यधिक हर्षोल्लास—ही बस गया है। इस प्रकार मेरे विभिन्न अंगो मे, जीवन मे जो चेतना-स्फुर्ति व्याप्त है वह तुझसे ही प्राप्त हुई है—मेरा व्यक्तित्व तुझसे ओत-प्रोत हो रहा है। मैं तुममय ही हो रही हूँ तब भल। मेरे लिए जग में और क्या प्राप्य रह जाता है—कुछ नही !

विशेष—प्रियतम के लिए 'चंचल' विशेषण प्रयुक्त है। यह इसलिए कहा गया है क्योंकि प्रियतम सदा दूर-दूर रहता है, कभी प्राप्त नही होता—हरजाई (Everfleeting) है।

[तेरा मुख सहास अरुणोदय]

अर्थ—अरुणोदय में तेरे सस्मित मुख का और विषादमयी रजनी (अँधेरी रात) में तुम्हारी छाया का आभास मिलता है। यह अरुणोदय जागृति तथा रात्रि स्वप्नमयी नीद का ही प्रतीक है—जब दिन (सृष्टि) होता है हम जागते हैं, संसार-कार्य में संलग्न होते हैं और जब रात्रि (प्रलय) होती है हम थकावट दूर करने के लिए सो जाते हैं। मैं तो केवल इतना ही समझती हूँ कि एक क्रीडामय दिन है और दूसरी विश्राममयी रजनी, जो जगत का सहज क्रम है अतएव जगत की रचना और विध्वंस, सृष्टि और प्रलय के भेद समझना अनावश्यक है—जब सृष्टि-प्रलय दोनों तुम्हारे ही प्रतिरूप हैं तो इनके रहस्यों को सुलझाने का व्यर्थ भार क्यों लिया जाये।

विशेष—'रश्मि' (या० ९४) की इन पंक्तियों से अर्थ और स्पष्ट हो जायगा—

सिन्धु को क्या परिचय दें देव !
बिगड़ते बनते वीचि-विलास ?
क्षुद्र हैं मेरे बुद-बुद-प्राण।
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश !
मुझे क्यों देते हो अभिराम।
थाह पाने का दुस्तर काम ?

[तेरा अधर विचुम्बित प्याला]

शब्दार्थ—अधर-विचुम्बित=ओठों से चूमा हुआ। हाला=शराब। मधुशाला=शराबखाना। साकी=सुरा पिलाने वाला प्रिय व्यक्ति।

अर्थ—यह प्याला तेरे ओठों के स्पर्श से धन्य हो चुका है—यह मानव शरीर तेरी जूठन है और इस प्याले के मधु में जो मादकता-मिठास है वह तुम्हारी मुस्कान ही की मादकता है—मेरे जीवन के उल्लास का रस भी तुम्ही हो। तुम्हारा हृदय ही मधुशाला है—यह संसार तुम्हारी

ही इच्छा का परिणाम है । हे साकी ! यह सब कुछ देने वाला तू ही है फिर यह प्रश्न कैसा कि तुम सुखामृत दे रहे हो या दु:खरूपी गरल। यह जीवन-प्याला जब तुम्हारा उच्छिष्ट (जूठन) ही है, फिर इसे पीने मे—जीवन को सहज भाव से, निःशंक व्यतीत करने में—हिचक कैसी? जब सुख-दुख के कारण तुम्ही हो तो इनको सहज भाव से ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है ।

विशेष—१.यहाँ 'प्याला' मानव व्यक्तित्व और 'मधुशाला' संसार का प्रतीक है ।

२.'तेरी ही'''हाला—इसमे फारसी शायरी का भाव है । इस मदिरा मे अपने आप मे कोई नशा नही, पर साकी के मुस्कराते चेहरे की मादकता, साकी की मुस्कान, इसमें है । शराब नही, वह मानो अपनी मुस्कान घोलकर पिलाता है ।

३. साकी अत्यन्त प्रिय व्यक्ति होता है । साकी से प्राप्त सुरा को सुरापयी (शराबी) निर्द्वन्द्व तथा प्रेम पूर्वक ग्रहण करते है ।

४. सुन्दर सागरूपक है ।

[रोम रोम में नन्दन पुलकित]

शब्दार्थ—नदन=स्वर्ग स्थित इन्द्रवाटिका, आनद देने वाला। निष्क्रिय लय=मुक्ति, जिसमे मनुष्य कार्य-मुक्त हो जाता है ।

अर्थ—हे प्रिय तुम्हारे प्रेम के कारण मेरा रोम-रोम आनद प्रदायक (स्वर्ग स्थित) ईन्द्रवाटिका के समान प्रफुल्लित है—मुझे प्रत्येक पुलक मे स्वर्गिक सुखो का आभास होता है । प्रत्येक साँस में शतशः जीवन भरे हुए है—अप्रतिम उत्साह है । मेरी एक-एक कल्पना नूतन संसार का विनाश-निर्माण करती रहती है । अतएव मेरे लिए स्वर्ग अथवा मोक्ष मूल्यहीन हो जाते हैं ।

[हारूँ तो खोऊँ अपनापन]

शब्दार्थ—निर्वासन=दण्ड रूप से निकाला जाना।

अर्थ—यदि मै पराजित हो जाऊं तो मुझे निजत्व अथवा अहं को खोकर बरबस अनिच्छापूर्वक प्रियतम मे निर्वासित हो जाना होगा—उससे मिल जाना होगा—और यदि मेरी जीत हो गई तो मै सीपी समान अपने लघु व्यक्तित्व मे सागर तुल्य उस विराट को भर लाऊंगी। इन दोनो अवस्थाओ मे मेरा और उसका मिलन है, अतएव मेरी हार-जीत का प्रश्न नही उठता।

विशेष - साकेत मे गुप्त जी ने कहा है—

प्रेमियो का प्रेम गीतातीत है। हार मे जिसमे परस्पर जीत है।

२. सीपी मे सागर भर लाने मे 'अधिक' अलंकार है।

[चित्रित तू, मैं हूं रेखाक्रम]

अर्थ—हे रहस्यमय प्रियतम। तू चित्र है तो मैं उसकी रेखाओं की व्यवस्था हूं—ब्रह्म पूरा चित्र है और मैं अपूर्ण किन्तु रेखाओ के विना चित्र कैसा और विना चित्र के रेखाओ का प्रयोजन कुछ नही—रेखा चित्रवत आत्मा-परमात्मा भी अभिन्न है। तू मधुर गीत है तो मै स्वरो का मेल हू। (यहाँ भी उपर्युक्त रेखाक्रम और चित्र की स्थिति है)। तू यदि सीमा-रहित असीम है तो मै भी सीमा का भ्रम मात्र हूँ, वास्तव मे ससीम नही हूँ—आत्मा-परमात्मा एक है। मेरा तुम्हारा सम्वन्ध काया-छायावत है। जैसे ये दोनो अभिन्न है वैसे ही मैं और तुम। अतएव हम दोनो मे प्रेमी-प्रेमिका का नाटक कैसे हो सकता है ?जब दो हो तभी प्रेम का नाटक हो सकता है। हम दोनो तो अभिन्न है अतएव यह प्रेयसी-प्रियतम का सम्वन्ध कैसा ?

विशेष—१. उल्लेख अलंकार है।

२. प्रियतम है तो 'रहस्यमय' किन्तु कवयित्री ने उसे जान लिया

है ।वस्तुतः प्रेयसी-प्रियतम, आत्मा-परमात्मा के पृथक अस्तित्व का भ्रम ही हमारा अज्ञान है । यही रहस्य है और इसे समझने से ही दोनो की एकता समझी जा सकती है ।

३. 'विश्वम्भर मानव' इस कविता की भूमिका स्वरूप लिखते है "नीरजा मे महादेवी की विचारधारा ज्ञान और प्रेम के दो कूलों के बीच, ब्रह्म और जगत के दो कगारो के बीच, सूक्ष्म और स्थूल के दो पाटो के बीच बही है । वहाव ज्ञान की अपेक्षा प्रेम की ओर अधिक है । स्वरुप की विस्मृति न होते हुए भी अस्तित्व की पृथकता का भान दृढ हो गया है और प्रेम का आनन्द आने लगता है । आत्म समर्पण को स्वीकार नही किया । दोनो बाते देखिए .....

(क) काया छाया में रहस्यमय
प्रेयसी प्रियतम का अभिनय क्या
(ख) हारू तो खोऊँ अपनापन......"

४. वस्तुत: 'निर्वासित' शब्द साभिप्राय है ।

इसमे स्वेच्छा का भाव नही होता । महादेवी ने अन्यत्र भी अपने निजत्व की रक्षा की बात कही है । वैसे भी प्रेममूलक सम्बन्धो के लिए—जैसा कि महादेवी स्वय लिखती है—"द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी, क्योकि एक के अभाव मे विरह की अनुभूति असम्भव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा आधार खो देती है ।"

५. निराला के परिमल की निम्न प्रसिद्ध पक्तियो से तुलना कीजिए—

तुम तुंग हिमालय शृंग,
और मै चंचल गति सुरसरिता ।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास,
और मै कांत कामिनी कविता ।

: १३ :

अवतरण—प्रेमी अपनी प्रेयसी को त्याग कर जा रहा है। विरहिणी, अभिमानी पथिक से कुछ प्रश्न पूछ रही है।

[बताता जा रे ·······रानी।]

शब्दार्थ—उर्वर=उपजाऊ।

अर्थ—मेरे आँसुओ मे ससार के कण-कण को—प्रत्येक क्रूर कठोर मनुष्य को भी—द्रवित करने की क्षमता है। मेरे विरहजन्य दु ख में सबको उद्वेलित कर देने की शक्ति है; मेरा मूल्यहीन दु:ख सबको करुणाशील बनाने के कारण संसार की सम्पदा है। अतएव हे निर्मोही प्रियतम! मुझे यह तो बताता जा कि मैं तेरे मिलन-जन्य सुख-वैभव की याचना करती रहू अथवा विरह जन्य दु.ख जो कि करुणा (सावेदना) उद्वेलित करने के कारण ससार की सम्पदा है, की रानी कहलाऊँ—इन दोनो मे से कौन सी स्थिति श्रेयस्कर है?

विशेष—यहां 'नीरजा' की ही कविता सं० २१ की इन पक्तियो का भाव प्रतिबिंबित हो रहा है—"प्रिय की भिक्षुक दु.ख की रानी।"

[दीपक सा जलता ··· ··· ··· पानी]

शब्दार्थ—प्रलयानिल=प्रलय की आँधी

अर्थ—मेरा हृदय दीपक के समान जल रहा है किन्तु वियोग-जन्य आँसुओं के बादलो और विपदाओ-निश्वासो की आँधी से

यह घिरा हुआ है । अब हे अभिमानी ! तू ही बता कि स्नेह रूपी तेल के स्थान पर हिमजल के समान तुम्हारी उपेक्षा से क्या यह जल सकेगा ? कदापि नहीं । उसे तो तुम्हारा स्नेह चाहिए तभी उसका जलना सभव है ।

[चाहा था ··· ··· · विरह कहानी]

अर्थ—मेरी तो यह इच्छा थी कि मैं आवागमन से मुक्त हो कर तुझ मे मिट जाऊँ किन्तु तुमने मुझे मिट मिटकर पुन बनने—आवागमन—की जो स्थिति दी है वह मेरे लिए अभिशाप है या वरदान यह मैं निश्चय नही कर पाई । अब हे अभिमानी प्रिय ! (ब्रह्म) तू यह बता कि मैं पूर्व मिलन—जब हम तुम एक थे (जब आत्मा परमात्मा से विलग नही हुई थी)—की प्रतीक हूँ या मिलनान्तर चिर वियोगमय जीवन की परिचायक हूँ ।

विशेषण :—इस गीत की स्वर-साधना पर लोक-गीत का प्रभाव स्पष्ट है ।

poetry is thinking in pictures—चित्रमय विचार ही काव्य है। केवल "वसन्त आगया" कहना ही कविता नही। उसका बिम्ब-ग्रहण कराने के लिए लताओ का लहराना, पीले पत्तों का गिरना, कलियो का चटकना, भ्रमरों का गुंजारित तथा कोकिल का मुखरित होना आवश्यक है और यही इन पंक्तियो मे हुआ है।

यहाँ कलियाँ नायिकाओ और भ्रमर नायको का आभास दे रहे हैं। "चौक" शब्द भी कितना सार्थक है। किसी बलवान के अकस्मात आगमन से जैसे कोई दुर्बल चौक उठता है और ताव न लाकर गिर जाता है वैसा ही भाव यहाँ पीले पत्तो से व्यजित हुआ है।

'समीरण' भी नायक का आभास दे रहा है। यहाँ यह शब्द सार्थक है—'वायु' अथवा 'पवन' से काम न चलता।

[मर्मर की वंशी मे गूंजेगा]

अर्थ—वसन्त, वंशी के समान मधुर, पल्लवों की मर्मर ध्वनि से, अपना प्रेम प्रकट करेगा। जैसे कृष्ण की वंशी मे गोपियो के लिए प्रेम का सदेश होता था उसी प्रकार पल्लवो की मर्मर ध्वनि मे भी। पवन के कारण तृण पर पड़ी बूंद ऐसे झड़ जाएगी जैसे रात्रि भर सजोया हुआ मधुर स्वप्न प्रात. होने पर मूल्यहीन आंसू के रूप मे ढल जाता है।

विशेष—जब तक हमारी आकाक्षा (स्वप्न, कामना) मन मे ही रहती है तब तक उनका महत्त्व है पर उसके व्यक्त होने से उसका मूल्य नष्ट हो जाता है।

["आया कौन ?" नीड़ तज पूछेगा]

अर्थ—तेरे सन्देश को सुन मधुवेला उपस्थित हो जाएगी अथवा एक नया समा बंध जाएगा। पक्षी अपने घोसलों मे चचल हो उठेंगे उनके कलरव मे यही प्रश्न होगा कि कौन आ रहा है। अपने सौंदर्य को घन-घूंघट में छुपाए लजवन्ती दिशा-सुन्दरियाँ भी नवागन्तुक

(वसन्त) के दर्शन की लोभ-लालसा मे लज्जा छोड़ घन-घूंघट को हटा लेगी और उनके गाल कंटकित हो जायेंगे—रोमांच हो आयगा और (सात्विक के कारण) कपोल स्वेद से आर्द्र (गीले) हो उठेंगे।

वसन्त मे—इसका अर्थ होगा कि पक्षी हर्षोल्लास मे कलरव करने लगेंगे, घन समाप्त हो जायेंगे और सब प्रकार का कलियाना और प्रस्फुटन budding and sprouting होने लगेगा।

[प्रिय मेरा निशीथ नीरवता में]

शब्दार्थ—निशीथ=रात्रि। निमिषो से=पलक झपकने से। सुभग=सौभाग्यशाली, सुन्दर।

अर्थ—तेरी काकली से वसन्त-आगमन होगा। इससे मुझे हानि होगी। मेरा साकोचशील प्रिय रात्रि के एकान्त-शान्त क्षणो मे ही आता है। उसके पैरो की आहट मेरे पलक-पात से भी नीरव 'नि.शब्द' है। यह रात्रि की नीरव घड़ियाँ मेरे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है अतएव हे सुन्दर तथा हठी पिक! इनमे तू विघ्न न डाल।

विशेष—महादेवी ने अन्यत्र भी लिखा है —

प्रियतम को भाता है
तम के पर्दे में आना
ओ नभ की दीपावलियो
तुम पल भर को बुझ जाना।"

—नीहार

किन्तु अन्धकार के अतिरिक्त प्रियतम शान्ति भी चाहता है, अतः कवयित्री ने उसका भी प्रबन्ध किया है—

"मैं आज चुपा आई चातक,
मैं आज सुला आई कोकिल"

—सांध्यगीत

[वह सपना बन बन आता]

अर्थ—उस प्रियतम से निद्रावस्था मे स्वप्न-मिलन ही सम्भव है। जागने पर तो वह लौट जाता है—तदाकार-तन्मयता की अवस्था में ही प्रतीक्ष्य (प्रियतम) से मिलना सम्भव है, बुद्धि और व्यावहारिक ज्ञानजन्य अहं की जागृति मे नही। मेरे कान और नेत्र तद्रूप हो गए हैं— दोनो का प्रतीक्ष्य एक हो गया है। दोनो ही अपने सहज कर्त्तव्यों से विमुख होकर—प्रियतम की ओर उन्मुख हो गए है। अतएव हे हठी पिक! तू मेरे कान मे जो मधुर कूक घोल रहा है वह व्यर्थ है, क्योकि मेरे कानो ने मधुरता को ग्रहण करने का गुण छोड़ दिया है— मेरे कान और नेत्र एक हो गए है।

विशेष १ तन्मयता की अवस्था मे अहं (माया) समाप्त हो जाता है। रहस्यवादी कवियो को प्रकाश, जागृति और होश से अधिक स्वप्न, छाया, अन्धकार आदि से प्रेम है क्योकि ज्ञान अथवा अलौकिक प्रियतम की उपलब्धि स्वप्न अथवा छाया मे ही होती है। निराला की निम्न पक्तियो मे यही भावना व्यक्त है—

> ......हुआ प्रात प्रियतम तुम जाओगे चले ?
> कैसी थी रात बंधु थे
> लगे गले
> फूटा आलोक
> परिचय परिचय पर जग गया
> भेद शोक
> जलते सब चले एक,अन्य के छले—

—गीतिका, निराला

यहाँ रात्रि के अंधकार मे प्रियतम गले लगे थे—किन्तु प्रभात-प्रकाश मे भेद बुद्धि जग जाने से प्रियतम जाने वाले है।

२. अत्यन्त तीव्रानुभूति की दशा मे सभी इन्द्रिया एकाकार हो

जाती है । सारी चेतना अभीष्ट कार्य में सलंग्न हो जाती है । महादेवी ने नीरजा की कविता ४१ मे कहा है—

"नयन श्रवण, श्रवणमय नयनमय आज हो रही कैसी उलझन !

—यही अवस्था यहा है ।

[भर पावे तो स्वर लहरी में]

शब्दार्थ—ठौर=स्थान, भोर=प्रातःकाल ।

अर्थ— हे पिक ! तू जो वसन्त का सदेश देने के लिए कूकना चाहता है उस पंचम राग का (राग के माधुर्य का) मेरे लिए कोई उपयोग नही । यदि तू मेरा हित चाहता है तो अपने राग मे वह करुणा भर दे कि प्रियतम द्रवित होकर छुपे तो मेरे हृदय मे ही । कारण, तेरे कूकने से प्रातः हो जायगी किन्तु उस स्थिति मे पलकें खोलने, जागने में मुझे कोई भय नही ।

विशेष—१ विरह की, दुःख की, साधना में ही उनको प्राप्त किया जा सकता है— हास-विलास मे नही ।

२. इस गीत मे कोकिल की काकली-कलित मधुमयता ही साकार हो उठी है । यहा लोक-गीत की लय मे साहित्यिक संस्कारो को बांध कर एक नए कलागीत की सृष्टि हुई है ।

३. केवल लय ही लोक-गीत सम्बन्धी नही, शब्दावली—हठीला होले, ठौर, भोर से भी तदानुकूल वातावरण निर्मित हुआ है ।

एक आलोचक-श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी ने "होले-होले" शब्द पर आपत्ति उठाई है । निःसदेह वह शब्द खड़ी बोली मे प्रयुक्त नही होता किन्तु यहाँ यह दूषण नही भूषण है—"धीरे-धीरे" मे वह कोमलता कहा जो "होले होले" में है । फिर ग्राम्यगीत की लय मे तो यह शायद और भी सजता है क्योकि ग्राम्य-वातावरण उपस्थित होता है ।

अवतरण—कवयित्री के प्रिय-मिलन को अनेक प्रलोभन आए किन्तु वह किसीको स्वीकार न कर सकी और विरह मे ही निमग्न रही। कारण, मिलन के चिह्न अस्थायी हैं किन्तु विरह चिरन्तन है। इस विरह की तपस्या से ही उसने अटूट-अखण्ड सौभाग्य प्राप्त किया है।

[पथ देख बितादी············जानी नहीं।']

अर्थ—प्रतीक्षा में ही सारी रात्रि व्यतीत हो गई। प्रियतम आया किन्तु मैं उसे पहचान न सकी। प्रियतम को आता देखकर, उसके स्वागत के लिए सारी प्रकृति सजकर तैयार हो गई। अंधकार ने प्रिय आगमन के मार्ग—आकाशपथ—को सुगन्धित ओस बिन्दुओ से धोकर स्वच्छ बना दिया। और आकाश रूपी आँगन को तारा-दीपों से जगमगा दिया। प्रात काल प्रियतम के वापिस जाने पर किसी अज्ञात-अलक्षित शक्ति की प्रेरणा से वे दीप बुझा दिए गए किन्तु कवयित्री तो प्रियतम की प्रतीक्षा ही करती रह गई, वह प्रियागमन को न जान सकी।

[धर कनक थाल············कहानी नहीं।]

अर्थ—सुनहरी किरणो से युक्त वायुमण्डल रूपी सोने के थाल मे गुलाब पुष्प के समान मेघ को रखकर, प्रात.कालीन सूर्य रूपी मंगल घट तथा मंगल गान के रूप में प्रातःकालीन पक्षियो के कलरव को लेकर—सभी प्रकार की पूजन सामग्री तथा मांगलिक विधानो से सुशोभित होकर—चिर परिचित पथ से प्रिय के लौटने की सूचना लेकर प्रात.काल आया किन्तु मैं कवयित्री उससे अपनी वियोग-व्यथा की कहानी न कह सकी।

विशेष— पंत ने भी वादल के अनेक अप्रस्तुत विधानों में 'उषा का पल्लव' कह कर उषा का वर्णन किया है ।

['नव इन्द्रधनुष सा............मानी नहीं ।'']

शब्दार्थ — चीर = दुपट्टा, मीलित पकज = बद कमल ।

अर्थः— नए इन्द्रधनुष के समान रगीन साडी पहनकर और लालिमा रूपी महावर तथा (साध्य) कालिमा रूपी अंजन से शृ ंगार करके, वन्दी भ्रमरो से गु जित बन्द कमलो के नूपुर पहनकर सध्या रानी प्रियतम की दूती के रूप मे उसे मनाने के लिए आई किन्तु वह अपने वियोग मे आत्मविस्मृत थी, इसलिए उसकी वात न सुन सकी ।

विशेष —इन पंक्तियो का ऐसा अर्थ भी हो सकता है कि सध्या-सुन्दरी, इन्द्रधनुप रूपी साडी, लालिमा रूपी महावर तथा कालिमा रूपी अजन और वन्दी भ्रमरो से गु ंजित वन्द कमल रूपी नूपुर-शृ ंगार के उपकरण—लेकर प्रियतम की ओर से उसका शृ ंगार करने तथा उसे मनाने आई किन्तु वह आत्मविस्मृति की दशा मे मानी नही ।

इस अर्थ से ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रियतम ने समझा कि प्रियतमा रूठ गई है अतएव उसने प्रियतमा के मान-मोचन के लिए सध्या के रूप मे दूती को भेजा ।

'अलि-गु ंजित मीलित पंकज-नूपुर रुनझुन ले' मे ध्वनि-चित्र आस्वादनीय है । The sound must yeen an echo to the Sense-Pope-निस्सदेह यहाँ शब्दो से ही अर्थ ध्वनित हो रहा है ।

['इन श्वासों को इतिहास............से पानी नहीं ।']

अपने विरह-जन्य निश्वासों के रूप मे वह निरतर अपने विरही जीवन का इतिहास लिखती रही है । उसके जीवन की घड़ियाँ उसमें रोमाच की अवस्था (सात्विक अनुभाव) उत्पन्न करने का प्रयास करती

हैं, उसे प्रसन्न करना चाहती है किन्तु खाली ही वापिस लौट जाती है—उन्हे असफलता ही हाथ आती है, अपने प्रयत्न मे कृतकार्य नही हो सकती। उन आँखो से आँसू नही प्रत्युत प्रियतम की स्मृति ही ढुलकती है।

['अलि कुहरा सा नभ............निशानी नहीं']

अर्थ—ऐश्वर्यशाली दृष्टिगत होने वाला व्योम धुंध के ही समान क्षणिक है, अस्थायी है और यह समग्र संसार भी बुलबुले के समान नश्वर है क्षणभंगुर है। यह पीड़ा का राज्य ही स्थायी है। अतएव अपने प्राणों में शाश्वत तथा चिरंतन विरह को पालनेवाली कवयित्री—जिसके कारण ही यह दुःख का साम्राज्य है—प्रियतम की अखण्ड सुहागिनी है, अल्पकाल मे मिट जाने वाला पदचिन्ह नही।

विशेषः—(१) विरह को प्रियतमा ने स्वेच्छा से स्वीकार किया है। यह अनन्त है इसलिए उसका सुहाग अमर है। अखण्ड सुहागिनी का भाव उन्होंने अन्य भी कई गीतो मे वर्णित किया है। जैसे—"प्रिय चिरन्तन है सजनि क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं" और 'दूर तुम से हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ"

(२) यह गीत अत्यन्त मार्मिक है। वेदना ही जैसे सम्पूर्ण गीत मे मूर्तिमान हो रही है। शब्द-योजना अत्यन्त भावानुकूल हुई है।

(३) इस गीत पर ग्राम्य गीत की लय का भी प्रभाव सुस्पष्ट है। लोक-गीत की लय को ही जैसे साहित्यिकता प्रदान की गई है। 'रैन' 'साझ' आदि शब्द शुद्ध लोकगीत-भाषा के हैं।

(४) 'मै प्रिय पहचानी नहीं' व्याकरण-सम्मत वाक्य नही।

(५) वर्ण-ज्ञान (sense of colour) की दृष्टि से भी यह

कविता महत्त्वपूर्ण है। यहाँ इन्द्रधनुषी, गुलाबी और सुनहरी रंगों की शोभा है।

(६) चलचित्र की-सी गत्यात्मक चित्रमाला है। क्रम से एक के पश्चात् एक चित्र चला आता है जैसे एक डोरी से बंधे हों।

अवतरण—दुःख में अपने अस्तित्व को लीन करके आत्मानन्द लाभ करना ही जीवन की सार्थकता है। 'मिटने वालो' की बेसुध रंग-रलियाँ ही विश्व मे सौरभ राग आलोक और हास्य की सृष्टि करती है।

[मेरे हँसते अधर नहीं।]

अर्थ—हे प्रिय मेरी सुख की हँसी मत देखो। अश्रुपूर्ण मेरी आँखो को पोछने का प्रयत्न मत करो, इस विश्व की मुर्झाई कलियो (दु.खो) को देखो—समाज के अपार सुख-दुख के सामने व्यक्तिगत सुख-दुःख की कोई महत्ता नहीं।

विशेष—१. व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि का कही अधिक महत्व है।

२. मुरझाई कलियो से भारतवर्ष की पीड़ित-शोषित एवं अपमानित-उपेक्षित नारियो की ओर भी संकेत है।

३. 'रश्मि' की भूमिका मे ही महादेवी ने लिख दिया था "व्यक्तिगत सुख विश्व-वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुख विश्व के सुख मे घुलकर जीवन को अमरत्व—दोनों अवस्थाओ में विश्व-रूपता आवश्यक है।"

'मेरे हँसते........देखो'—रश्मि की इन पंक्तियो से तुलना कीजिए—

देखूँ हिम हीरक हँसते हिलते नीले कमलों पर।
या मुरझाई पलकों से झरते आँसू कण देखूँ॥

[हँस देता नव इन्द्र धनुष की स्मित]

अर्थ—सृष्टि हेतु मिटने वालों को दुख नही उल्लास होता है। वादल वर्षा के रूप मे स्वयं मिटता हुआ भी, समाज को हरीतिमा प्रदान करने के कारण अपनी हँसी को इन्द्र धनुप के [सतरंगों में व्यक्त कर जाता है। यद्यपि दिन का पर्यवसान रात्रि मे होता है, तथापि अपनी निष्फल यात्रा के अन्त मे यह जानते हुए भी कि मैं समाप्त होने वाला हूँ, ससार को सध्या के रूप मे प्रेम की लालिमा से रंजित कर जाता है। एक फूल का जीवन क्षणिक है पर मरते-मरते भी वातावरण को सुरभित कर जाता है। एक छोटे-से दीपक की क्या सत्ता, फिर भी अपनी जीवन-लीला समाप्त करते-करते अन्धकार को भी आलोकित कर जाता है। इसी प्रकार हे निष्ठुर प्रियतम ! तुम परोपकार की वलिवेदी पर झूम-झूमकर चढने वाले वेसुध—भविष्य के दुष्परिणामो की चिन्ता से मुक्त—तथा वलिदानी व्यक्तियों के अमर कृतित्व पर दृष्टिपात करो।

[गल जाता लघु बीज।]

अर्थ—एक क्षुद्र वीज, अन्य अनेक नवीन वीज उत्पन्न करने के लिए अपने को समाप्त कर देता है। एक पत्ता नवीन पत्तों के उद्भव के लिए अपने मूल को छोड़ गिर पडता है। हे प्रिय ! एक पल अनेक युगो की सृष्टि करने के लिए समाप्त हो जाता है। परमात्मा से अपने पृथक् होने की भूल को भूल कर ही, इस नश्वर जगत की रचना हुई है और अव भूलों से ही ससार वना हुआ है।

हे प्रिय ! आज मेरे वन्धनो के प्रति सवेदनशील होने की अपेक्षा ससार के वन्धनो की ओर दृष्टि दो।

विशेष—नाश और निर्माण ससार का अटल क्रम है और इन दोनों का घनिष्ट सम्वन्ध है। यही वात पन्त जी ने पल्लव की 'नित्य जग' में कही है—

"मूंदती नयन मृत्यु की रात।
खोलती नव जीवन की प्रात,

शिशिर की सर्व प्रलय कर वात।
वीज वोती अज्ञात,

म्लान कुसुमों की मृदु मुस्कान,
फलों में फलती फिर अम्लान।

महत है, अरे आत्म-बलिदान,
जगत केवल आदान-प्रदान।"

यदि मनुष्य अपने व्यक्तिगत दु ख को समस्त ससार के दु.खो की पृष्ठभूमि मे रखकर देखे तो उसे निजी दु ख अत्यन्त तुच्छ जान पड़ेगे।

यदि थोडी सी हानि से अपार लाभ हो, एक लघु वीज के नष्ट होने से यदि असख्य वृक्षों का निर्माण हो तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वीज की मृत्यु हो गई ? मृत्यु के इस रहस्य को समझ लेने से मनुष्य निर्भय हो जाता है और त्याग के महत्व को समझ सकता है।

महादेवी की निम्नलिखित पक्तियां भी इसी आशावाद के आशय को स्पष्ट कर रही है—

'स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार,
दीप करता आलोक प्रदान।
गला कर मृत्पिण्डों में प्राण,
वीज करता असख्य निर्माण।
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता म ही पूर्ति विकास।।"

इकवाल के इस शेर से तुलना कीजिए।

मिटा दे अपनी हस्ती को अगर कुछ मरतबा चाहे,
के दाना खाक में मिलकर गुलों गुलजार होता है।

[श्वासें कहतीं 'आता पिय']

अर्थ—श्वासे (inhale) प्रियतम के आगमन और निश्वासें (exhale) बहिर्गमन का आभास देती है—हृदय मे निरतर प्रियतम की स्थिति का भान होता रहता है किंतु प्राप्ति फिर भी नही होती, फलतः वियोग रहता है। क्योंकि वह प्रत्यक्ष दिखाई नही देता अतएव वह नयनो के लिए अज्ञात है। किंतु हृदय मे सदैव उसीकी अनुभूति होती रहती है, फलत. हृदय से उसका चिर सम्बन्ध है—दृष्टि का विषय होने के कारण अनजान, किंतु अनुभूति का विषय होने से परिचित है। वह प्रेम भरा स्वप्न जब आत्मा-परमात्मा एक थे और इसलिए आनंद था—क्षण-क्षण नवीन बनकर स्मृति मे आता है। यह स्मृति-जन्य सुख तो विरह के अश्रुओ मे बह जाता है, परन्तु दुख हृदय मे ही स्थिर रह जाता है। सुख क्षणिक है किन्तु दुख स्थायी है। यदि तुम वास्तव मे मेरे हृदय मे विद्यमान हो, तो तुम मेरा रूप धारण करके —मेरी चेतना और तत्व के साथ एक रूप होकर— दुख का आस्वादन करो तथा संसार की बिखरी पखुरियो—दुःखो—का भी अनुभव कर सको। कारण, घायल ही घायल की गति को जान सकता है, दुखी ही दूसरो के दुःख अनुभव कर सकता है।

विशेष—"दुख उलझन मे"—वृत्तियो के संकोच मे दुःख घुमड़ कर रह जाता है और सुख उमड़कर बह जाता है।

: १८ :

अवतरण—प्रियतम की मधुर वेदना से भरकर इस प्रेमी हृदय की वीणा से ऐसी अद्‌भुत-अलौकिक झंकार उठ सकती है कि प्रियतम रीझ जाए। साधकों की घायल व्याकुल-साधना कभी निष्फल नहीं गई, सदैव रंग लाई है।

[इस जादूगरनी वीणा पर]

अर्थ—इस मधुर वेदनामय प्रेम की वीणा पर पल भर ही गाकर मुझे प्रियतम को रिझा लेने दो। देखो न जिस किसी साधक ने पल भर भी एकनिष्ठ-अनन्य साधना की है उसे अभीष्ट की प्राप्ति अवश्य हुई है। जैसे—जब व्याकुल चातक का रोम-रोम प्यासा होकर साधना करने लगा तो जड़-चेतन हिल उठा और तारोमय वैभवपूर्ण आकाश भी काँप उठा। बादल का हृदय भी पसीज उठा और चातक की कामना पूर्ण हुई। मेरे प्रियतम भी इसी प्रकार पसीज उठें यदि मैं प्राणों में चातक बसा लूँ—उसकी साधना अपना लूँ।

विशेष—१. हृदय की वेदना-साधना ही जादू की वीणा है, जो सबको हिलाने की सामर्थ्य रखती है। हृदय=वीणा। वेदना=जादूगरनी।

२. दीपशिखा की निम्न पंक्तियों से तुलना कीजिए—

जो न प्रिय पहचान पाती !

× × ×

मेघपथ में चिह्न विद्युत के गए जो छोड़ प्रिय-पद
जो न उनकी चाप का मैं जानती संदेश उन्मद
किस लिए पावस नयन में
प्राण मे चातक बसाती ?

[क्षण भर ही गाया फूलों ने]

अर्थ—चातक के समान फूल की साधना भी अनुपम है, जब छोटे-से फूल ने हँसते हँसते अपनी करुणा से अभिभूत हो अपने अनन्त सौरभ से सारे वातावरण को स्वर्ग स्थित इन्द्रवाटिका के समान सुरभित तथा आनन्दमय बना दिया, तो वह झर गया, उसका पार्थिव-ससीम व्यक्तित्व अवश्य नष्ट हो गया किन्तु अमर जीवन की प्राप्ति हुई।

विशेष—इससे पहली कविता मे इसी भाव की पंक्ति देखिए—

कर जाता संसार सुरभिमय एक सुमन झरता-झरता।

[एक निमिष गाया दीपक ने]

शब्दार्थ—निमिष=उतना समय जो एक पलक गिरने मे लगे। दिव=स्वर्ग; आकाश; दिन।

अर्थ—एक क्षण भर के लिए दीप ने ज्वाला-साधना से अपने को प्रदीप्त किया। वही क्षण इसका गौरव सिद्ध हुआ। एक छोटा-सा रजकण ऐसे असीम प्रकाश के सागर मे परिवर्तित होगया जिस पर स्वर्ग अथवा सूर्य भी न्योछावर किया जा सकता है।

[एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी]

शब्दार्थ—उपल=पत्थर

अर्थ—चातक, पुष्प तथा दीप के समान मैं भी आध्यात्मिक पीड़ा से अन्तर को आपूर्ण कर गा उठूँ। इससे मेरी दुख-सुख में सम-स्थिति होजाए तथा उपलवत् नीरस जीवन में झरनो की सरसता आ

जाए और मेरा निर्जनवत् ह्रास-जर्जर जीवन हरा-भरा होजाए।

विशेष—रवीन्द्र और पंत की निम्न पंक्तियों में भी यही जादू-गरनी-वीणा द्रष्टव्य है—

जीवन लये जतन करि
यदि सरल वांशि गड़ि,
आपन सुरे दिने भरि सकल छिद्रतार

—गीताञ्जलि

वंशी से ही कर दे मेरे सरल प्राण औ, सरस वचन

× × ×

रोम-रोम के छिद्रों से माँ! फूटे तेरा राग महान्

—वीणा

अवतरण—इस कविता मे महादेवी, घन सदृश निन्य घिरने और झरने—जन्म और मृत्यु—की आकांक्षा प्रकट करती हैं। चिरमुक्ति की उन्हें आकाक्षा नही। वे तो घन के समान विश्व के लिए करुणाशील बनी रहना चाहती है।

['घन बनूं ... मिटूं प्रिय।']

शब्दार्थ—जलधि=सागर। मानस=मन रूपी सागर। सुभग=सुन्दर। व्योम=नभ। विनिर्मित=बना हुआ। मन्थर=धीरे।

अर्थ—हे प्रिय! मुझे यह वरदान दो कि मैं घन सदृश बनूं—घन के समान करुणाशील बनूं। तुम्हारे ही मन रूपी सागर से नया जन्म पाकर और तेरे नयन रूपी नभ में, तरल जल-कणो द्वारा बने हुए मेघ सदृश मूक तथा मन्थर गति से नित्य प्रति घिर-घिर कर झरती रहूं—आवागमन के बंधन मे बंधे रहकर संसार को प्रफुल्लता प्रदान करती रहूं।

विशेष—(१) बादल का जन्म सागर से होता है किन्तु वह स्वरूप आकाश मे ही धारण करता है।

(२) 'मूक' से साधना की गम्भीरता प्रकट होती है। महादेवी अन्यत्र लिखती हैं—

पपीहे तू 'मौन' का मंत्र सीख।

—(या० ११५)

(३) 'अभ्र विनिर्मित गात' तथा 'क्षर क्षर मिटूं' से निरन्तर करुणा के अश्रुओ के प्रवाहित होने का संकेत है। महादेवी ने नीरजा की ही कविता सं० ५२ में भी कहा है—

'झरते नित लोचन मेरे हों

(४) महादेवी अपनी कारुण्य भावना को घन के माध्यम से भली-भांति व्यक्त करती हैं। इसीलिए इन्हे घन का उपमान अत्यन्त प्रिय है। इन्होने सांध्यगीत मे अपना परिचय भी इसी रूप मे दिया है—

मैं नीर भरी दुख की वदली।

सांध्यगीत की एक और कविता मे भी महादेवी जी ने अपने को वदली वनाते हुए मुक्ति के प्रति अनिच्छा व्यक्त की है।

देव अव—वरदान कैसा ?
जन्म से यह साप है मैंने इन्हीं को प्यार जाना
मित्र ही समझा दृगो को अश्रु को पानी न माना।
इन्द्रधनु से नित सजी सी,
विद्यु हीरक से जडी सी,
मैं भरी वदली रहूँ
चिर मुक्ति का वरदान कैसा ?

(५) 'जलधि-मानस' जन्म पाने का तात्पर्य यह है कि ससार उस परमात्मा की इसी इच्छा—'एकोऽहम् वहुस्याम्' का परिणाम है। घन और सागर के सम्बन्ध को दीपशिखा मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

सिंधु का उच्छ्वास घन है।

(६) महादेवी जी की ऐसी जन्म-मरण की आकाक्षा के सम्मुख उन का वौद्ध-दर्शन पराजित हो जाता है। ससार को दु.खात्मक समझने वाले वौद्ध-दर्शन का प्रभाव उनपर अवश्य है किन्तु इस दुःखवाद को भी उनके हृदय मे एक नया जन्म लेना पडा जैसा कि उनका स्वमत भी है। उन्हे तो संसार के प्रति एक प्रकार की अनुरक्ति है ताकि वे अपनी करुणा से सारे विश्व को आर्द्र कर सकें। इसीलिए तो चिर जन्म-मरण की आकाक्षा करती है। और आवागमन के चक्र मे फँसी रहना चाहती है। तभी तो उन्हे वौद्धो का निर्वाण सिद्धान्त मान्य नही, उनका काव्य आत्मवाद की सुदृढ भित्ति पर आधारित है, अनात्मवाद मे उनका विश्वास नही।

अवतरण—रात्रि की नीरव-निभृत अन्धकारमयी वेला में अनन्त प्रियतम से मिलकर मैं चिर सुहागिन बनूँगी।

[आ मेरी चिर मिलन-यामिनी]

शब्दार्थ—यामिनी=रात। तममयी=अंधकार से युक्त। अलकों=बाल। सीरे=शीतल। शिथिल कवरी=खुली वेणी।

अर्थ—आज प्रियतम से मेरे चिर मिलन—अंतिम लय—का समय है। मुझे कृष्ण पक्ष की घोर अंधकारमयी रजनी की अपेक्षा है। अंधकार से पूर्ण निशिनायिका तू आ किन्तु अपने बालों में हीरे (तारे) न सजा के आ—ताकि तनिक भी प्रकाश न रहे, तू अपनी वेणी को खोल दे ताकि अंधकार बढ़ जाय, इस शिथिल वेणी में हरसिंगार के जो फूल लगे हुए हैं वह भी धीरे-धीरे झर जाएँ और अंधकार और प्रगाढ़ हो जाए, तेरे शीतल श्वास—शीतल समीर—संसार को न जगाएँ ताकि प्रिय-मिलन में मुझे कुछ बाधा न हो।

[हौले डाल पराग-बिछौने]

अर्थ—यह मेरी मिलन की रात्रि है और मुझे अंधकार तथा एकांत ही काम्य है। अतएव तू इस सोए हुए विश्व को, चन्द्ररूपी प्याले से चाँदनी की मदिरा ढालने के लिए मत जगा। मेरी सुहाग रात के लिए पराग की—अत्यन्त कोमल, फूल से भी अधिक कोमल—शैया तैयार कर, किंतु यह सारा कार्य हौले हो—किसी प्रकार

का शब्द न हो, नीरवता बनी रहे। आज तू कलियो को—ओस की बूंदो के रूप मे—मत रोने दे क्योंकि मेरे मिलन की मधुर वेला मे यह रोना कैसा ? साथ ही उनके झिलमिलाते हुए ओस-अश्रुओ से प्रकाश फैलने की भी आशंका है।

[परिमल भर लाये-नीरव घन]

अर्थ—मेघ माला मे भी किसी प्रकार का शब्द न हो और वह परिमल—पृथ्वी की सुगंधि—से पूर्ण हो जाएं। बादल का कोमल हृदय—वर्षा के रूप मे—आँसू न बहाए अथवा आकाश का हृदय भी आँसुओं (ओस) के रूप मे न गले, पपीहे की 'पी कहाँ', 'पी कहाँ' की व्याकुल रट भी सुनाई न पड़े। हे सखी, चंचल दामिनी-नायिका, जुगनू रूपी मोती के हार को पहन कर हँसे नही अर्थात् न विजली चमके और न जुगनू टिमटमाएँ।

विशेष—कवि सम्प्रदाय के अनुसार पपीहा पावस ऋतु में 'पी कहाँ' की रट लगाया करता है और स्वाति नक्षत्र में होनेवाली वर्षा से ही उसकी प्यास बुझ सकती है।

[अपलक हैं अलसाये लोचन]

अर्थ—प्रियतम की चिर प्रतीक्षा करते-करते मेरे नेत्र भी अलसा गए है—निश्चल-निर्निमेष हो गए है। आज मेरे बन्धन ही मुक्ति बन गए है—विरह की चरम सीमा मिलन का प्रथम सोपान बन गई है। चिर प्रियतम से चिर लय अथवा मिलन के पूर्व का छोटा-सा क्षण भी अनन्त हो गया है—हे रजनी सखी आज मेरी हृदय की तन्त्री की झंकार (धडकन) से कोई विरह का राग नही निकलेगा—अब विरह समाप्त हो गया है।

[तम मे हो चल छाया का क्षय]

अर्थ—मुझे मिलन-हेतु इस अंधकार की अपेक्षा है क्यों कि इस अंधकार में लीन होने से मेरा नाश नही होगा—छायावत मेरा

शरीर तो मृत्यु रूपी अन्धकार मे लुप्त हो जायगा किन्तु आत्मा तो अमर है, और मृत्यु आत्मा का मिलन द्वार है। यह मिलन लघु-ससीम मात्र का अनन्त-असीम के साथ मिलन है। अतएव आज की सुहाग रात मे अपने सीमित व्यक्तित्व को लय कर के मैं चिर सुहागिनी कहलाने का वरदान पाऊँगी।

विशेष—१. प्रा० शिवमंगलसिंह 'सुमन' इन पंक्तियो मे महादेवी के रहस्यवाद का सार देखते हैं।

२. 'नीहार' मे भी कवयित्री ने यही इच्छा प्रकट की है—

इस असीम तम मे मिलकर मुझ को पल भर सो जाने दो।

श्री वृजकिशोर चतुर्वेदी (आधुनिक कविता की भाषा) इस कविता की कुछ पक्तियो को देते हुए अंग्रेजी के कवि शैली से तुलना करते है—

"कवि शैली का Ode to night एक बडा प्रसिद्ध गीति काव्य है, जो इस प्रकार आरम्भ होता है—

Wrap thy form in mantle grey star-ir
—wrought !

इस पद्य की छाया स्थान-स्थान पर यामा मे दृष्टिगोचर होते हैं। रात्रि से मिलने के लिए कवि शैली अत्यन्त कातर हो जाता था महादेवी भी कहने लगती है—

आ मेरी चिर मिलन-यामिनी........
..................शृंगार-कामिनी !

× × ×

अपलक है..................
..................विरह रागिनी !

विचार शैली का ही है परन्तु यामा मे एक दम भारतीय रंग मे रँगा हुआ है।

अवतरण—इस गीत मे कवयित्री ने मीरा को प्रशस्ति दी है और जग के कल्याणार्थ उसका आह्वान किया है।

[जग घो मुरली की मतवाली !]

शब्दार्थ—गोरसवाली=गोपी।

अर्थ—ओ कृष्ण की मुरली की मतवाली मीरा ! मैं तेरा आह्वान करती हूँ। यदि तू गोपी के रूप मे (संसार के कल्याणार्थ) सिर पर करुणा का मगलघट, अश्रुओ मे कल्याणी यमुना और हृदय की धड़कन मे निर्माणमयी वशी के स्वर को लिए हुए आए तो सारा वातावरण राग-रजित हो जाए—ससार का कण्टकाकीर्ण विपम पथ ब्रज की गलियो के समान आनंदमय हो उठे, वासतिक सुपमा से लहलहा उठे।

विशेष—वंशी-ध्वनि मे निर्माण का स्वर है। कवयित्री ने नीरजा की कविता सं० ५३ मे यही कहा है—

शख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान।

[चरणों पर नवनिधियां खेलीं]

शब्दार्थ—सेली=योगियो का वेश।

अर्थ—मीरा तू राजरानी थी—सब प्रकार की सुख-सम्पदा तेरे चरणो पर लोटती थी, किन्तु इन सब का त्याग कर तूने योगियो का-सा वेश धारण कर लिया। कृष्ण के पवित्र प्रेम के पागलपन (Divine madness) मे ही तेरी वास्तविक जागृत अवस्था थी। समस्त भौतिक सुख-वैभव को छोड़कर वास्तविक धन—प्रियतम—की तू भिक्षुक तथा

उसके वियोग-जन्य दु.ख की रानी बनी। वियोगाश्रुओ से ही प्रिय-प्रेम की बेल को सीच-सीच कर दृढ किया।

विशेष—१. "खारे दृग···पाली"—मीरा की निम्न प्रसिद्ध पंक्ति का रूपान्तर है—

अंसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई।

२. "प्रिय की···रानी"—इस पंक्ति का भाव नीरजा की कविता सं० १३ मे भी व्यक्त हुआ है—

तेरे वैभव की भिक्षुक या
कहलाऊं रानी!

३. विरोधाभास अलकार का सार्थक प्रयोग है।

[कंचन के प्याले का फेनिल]

शब्दार्थ—हलाहल=जहर। पदपद्मो=चरण कमलों। मधुजल= अमृत।

अर्थ—(अपनी साधना के बल पर) राजा के द्वारा भेजे हुए नीलम तथा अधकार से काले घोर विष को तू प्रियतम के चरण-कमल का श्वेत अमृत जानकर पी गई। आज पुनः तू अपने वरद हस्त से छू कर (संसार के अथवा मेरे) विष को अमृत कर दे।

विशेष—मीरा ने कहा ही था :

राणे भेज्या जहर पियाला
अमरत कर पी जाणा।

[मरु शेष हुआ यह मानस सर]

अर्थ—आज ससार का मन-सागर मरुस्थल (रेगिस्तान)—स्नेह-शून्य—बन गया है, आज आंख के निर्झर भी सूख गए है—कारुण्य भावना लुप्त हो गई है। इस शीतकाल की दीर्घ दु.खमयी

रजनी का भी अन्त नहीं। पतझड़ (जर्जरता तथा दुख) का प्रसार है, इसीका एकछत्र साम्राज्य है; वसन्त—हर्षोल्लास—का नाम नहीं। अतएव हे मुरली की मतवाली मीरा कोकिले तू गा उठ ताकि संसार की डाली-डाली वासतिक सुषमा से जगमगा उठे—सर्वत्र हर्षोल्लास छा जाए।

: २२ :

अवतरण—अपने ही सुख मे विलीन तथा दुःखो के अनुभवो से शून्य मनुष्य से किसी करुणा-संवेदना की आशा करना व्यर्थ है। वियोगिनी कवयित्री प्रियतम तक अपना सदेश तारो, उषा, संध्या और रात्रि के द्वारा पहुँचाने मे असफल होती है क्योकि सभी अपने ही राग-रंग मे मस्त है।

[कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती।]

शब्दार्थ—अक्षय=जो कभी समाप्त न हो। द्वय=दो।

अर्थ—मेरे लिए प्रिय को संदेश पहुँचाना कठिन है। यद्यपि मेरे पास लिखने की सारी सामग्री है—आँसू की अक्षय स्याही, स्याही की प्यालिया स्वरूप दो नेत्र, निरतर गतिशील क्षणो के चंचल पृष्ठ, सुधि-रुपी लेखनी और श्वास रूपी अक्षर—तथापि मै संदेश नही लिख पाती, कारण मै प्रियतम के प्रेम मे इतनी मतवाली हूँ कि लिखना कुछ चाहती हूँ और लिखा कुछ जाता है—अभीष्ट सदेश को लिपिवद्ध नही कर पाती।

[छायापथ में छाया से चल।]

शब्दार्थ—विभ्रम=एक हाव। इंगित=संकेत।

अर्थ—किसी छाया लोक—रहस्यमय अज्ञात लोक—से आकर असख्य तारे, आकाश गंगा मे निरतर विचरण करते रहते है। वे न जाने अपने हावो-भावो से क्या रहस्यमय संकेत करते रहते है जो कभी परिचित तथा कभी रहस्यमय से प्रतीत होते है जिससे वास्तविकता का

ज्ञान नहीं हो पाता। अतएव ऐसे अपरिचित-अविश्वसनीय तारों में से किसको दूत बना कर, प्रियतम तक अपने हृदय के मर्म-भाव को पहुँचाने के लिए भेजा जा सकता है—किसी को नहीं।

[अज्ञात पुलिन से उज्ज्वलतर।]

शब्दार्थ—पुलिन=किनारा।

अर्थ—किसी माँझी कन्या के समान उषा किसी अज्ञात किनारे से, अपनी विद्रुम-निर्मित नौका में किरणों रूपी मोती भरकर नीलम के समान तमाच्छादित काले आकाश के इस तट पर ले आती है। इस प्रकार वह मेरी रजनीवत करुण कहानी में मुस्कान की किरणें भरकर चली जाती है—मेरी वेदना का उपहास करती है, समर्थन-अनुमोदन नहीं। अतएव मैं ऊषा द्वारा भी अपना संदेश नहीं भेज सकती।

विशेष—आकाश रूपी सागर का एक किनारा अदृश्य है, वही अज्ञात पुलिन है और दूसरा अंधकारमय तट है जो लक्षित हो रहा है।

[सज केशर पट तारक बेंदी।]

अर्थ—केसरी दुकूल पहने (संध्या के समय का केसरी रंग) एक तारे (सध्या के समय पहले पहल जो एक तारा निकलता है) की बिंदी सजाए, नयनों को अंजित (सध्या की कोमल कालिमा) किए, पैरो में लाल मेंहदी (संध्या समय की लालिमा) लगाए और गागर में मादक लाल मदिरा (संध्या की ललाई जो दिन के श्रांत-क्लांत जीवों को मदिरावत मस्ती से आराम पहुँचाती है) भरे, मानों सौभाग्यमयी प्रेमिका के समान शृंगार किए संध्या आती है। वह मेरे दुःख के प्रति कोई संवेदना नहीं दिखाती, बल्कि अपना सुख प्रदर्शित करती है। अतएव उसके द्वारा भी अपना संदेश पहुँचाना कठिन है।

विशेष—१. घायल की गति को घायल ही जान सकता है, अपनी ही मस्ती मे लीन व्यक्ति नही। यहाँ सौभाग्यवती सध्या भी स्वसुख मे मग्न है।

२. 'आती... ... ...गगरी'-निराला ने 'परिमल' में अपनी सध्या सुन्दरी के लिए यही लिखा है—

मदिरा की वह नदी बहाती आती
[डाले नव घन का अवगुण्ठन।]

अर्थ—अपने मुख पर किसी नवीन मेघ का घूंघट डाले (मानो कृष्ण पक्ष मे अपने को छिपाये हुए) टिमटिमाते तारो के रूप मे अपनी दृष्टि को आर्द्र किए (रात्रि मे ओस गिरती है) नीरव पदचाप से, किसी को जगाते हुए नही, केवल स्वप्न जागृत करती हुई, अभिसार निमित्त उत्तेजना जन्य श्वासो से नीरव अधकार का प्रसार करती हुई निशि कृष्णाभिसारिका की भाँति आती है। वह अपने अभिसरण सुख के अश्रुओ से मेरे सदेश पहुँचाने की अनुनय-विनय को धो डालती है—कोई ध्यान नही देती।

विशेष—सारी कविता मे एक चित्रमाला और कल कल्पनाओ का माधुर्य है।

: २३ :

अवतरण—प्रियतम की विरह-साधना से वसन्तस्वरूप वनी हुई कवयित्री को केवल प्रिय की मधुर 'मुरलिका' की कामना है।

[मैं वनी मधुमास आली।]

शब्दार्थ—मधुमास=वसन्त। आली=सखी। यामिनी=रात्रि। कालिन्दी=यमुना।

अर्थ—हे सखी! आज मैंने वसन्त का रूप धारण कर लिया है, प्रियतम का विरहजन्य आह्लादकारी दुःख ही मानो वसन्त की रात्रि है। वसन्त की रात्रि चन्द्रिका-चर्चित होती है। यहाँ भी प्रियतम की सुधिरूपी चन्द्र से पुलकरूपी चाँदनी वरस रही है—मुझ विरहिणी के मनरूपी आकाश में स्थित प्रिय की सुधि जन्य मुखरूपी चन्द्र से शरीर (अथवा व्यक्तित्व) रूपी पृथ्वी पर प्रेम-पुलकरूपी (वसंत मे नए किसलय आदि आते हैं जो शरीर के पुलकित रोम सदृश हैं) चाँदनी हो रही है। सुधि के कारण आँखो मे आँसुओ की यमुना ही उमड़ उठी है।

विशेष—विषाद का रंग काला माना गया है और यामिनी भी काली होती है—अतएव विषाद एव यामिनी मे वर्ण-साम्य है।

[रजत-स्वप्नों में उदित।]

शब्दार्थ—रजत=चाँदी। वात=वायु। पचम तान=कोयल क उच्च मधुर काकली।

अर्थ—वसन्त की राका रजनी मे दूर-दूर तक कही-कही—विरल, सघन नही—तारे छिटके होते है उसी प्रकार मेरे मन मे भी अनेक

चाँदी के समान सुन्दर स्वप्न समाए हुए हैं। ऐसे मधुर-मादक वातावरण मे मेरे सुखरूपी कोकिल ने सहसा जागकर मादक पंचम स्वर छोड़ दिया—अत्यधिक सुख उमड़ पडा। मेरे मन-निकुंज से कोमल निश्वासरूपी शीतल मद-सुगन्ध समीर वहने लगी।

[सजल रोमों में बिछे हैं।]

अर्थ—मेरे शरीर के मधुर पुलकित रोम मानो प्रिय के स्वागतार्थ कोमल-मुलायम रसमय पाँवडे है। आज मेरे जीवन में प्रत्येक घडी ऐसी आ रही हैं मानो किसी अपरिचित देश से कोई मधुर सदेश ला रही हो। इस प्रकार मेरा समस्त व्यक्तित्व वसन्तमय हो गया है—वसन्त के जो-जो लक्षण होते है, सभी से मै युक्त हूं। केवल अभाव है तो प्रिय की मधुर रागमयी मुरलिका का, जिसका वादन वे वसन्त मे करते है। क्या उनका वेणुवादन नही होगा ?

विशेष—१. सारी कविता मे सुन्दर सागरूपक है।

२. कवयित्री का प्रकृति से पूर्ण तादात्म्य हो गया है।

अवतरण—उस विराट ब्रह्म के जो गुण हैं वे भावुक मानव के द्वारा ही आरोपित हैं और मानव-हृदय में जो चेतना है, वह उसी ब्रह्म की है।

[मैं मतवाली इधर]

शब्दार्थ—स्नेह=प्रेम; तेल। गाथा=कथा

अर्थ—इधर मैं मतवाली प्रिया हूं और उधर मेरे सुन्दर निराले प्रियतम। हम दोनों के विचित्र सम्बन्ध हैं जो नाना प्रकार से व्यक्त हो रहे हैं। मेरे अश्रुओं में जो मोती की सी कांति है वह वस्तुतः उसी की सुन्दरता है। और उस विराट प्रियतम के मेघरूपी प्यालों में जो बिजली रूपी शराब भरी हुई है वह वस्तुतः मेरी ही छवि है। प्रियतम के आकाश रूपी सौध (महल) में जो तारा रूपी दीपक जल रहे हैं, उनमें मेरी भावनाओं की स्निग्धता (स्नेह; तेल) ही है। ये प्राण मेरे हैं—इनकी अधिकारिणी मैं हूं—पर मेरे होकर भी ये मेरे नहीं हैं। इनकी प्रत्येक कम्पन प्रियतम की कथा कह रही है—इनमें प्रियतम की सुख स्मृति भरी हुई है। मेरे व्यक्तित्व में यदि स्वप्नों की हाट—कल कल्पनाओं का जमघट—है तो हे सखी, वहाँ आकाश में (जो विराट प्रियतम का द्योतक है) बादलों का।

विशेष—नीरजा की ही कविता संख्या १२ में कवयित्री ने लिखा है—

तारक में छवि, प्राणों में स्मृति

भर लाई हूं तेरी चंचल।

[उसकी स्मित :लुटती रहती]

शब्दार्थ—मधु की वेला=वसंत ऋतु । वेला=समय; किनारा ।

अर्थ—मेरे मनरूपी मधुवन मे जो पुलकों के संसार (हर्ष) रूपी कलियो का विकास है, उसमें उस प्रियतम का ही हर्षोल्लास है । उस प्रियतम की मधुशाला मे जो हाला बिक रही है उसमें मेरे मन की ही मस्ती-मादकता भरी हुई है । प्रियतम के विरह जन्य मधुर दुख-रूपी राज्यकी रक्षा उसकी स्मृति रूपी पहरेदारो से होती रहती है—प्रियतम की स्मृतियो के कारण ही यह आह्लादकारी मधुर वेदना बनी रहती है । स्मृतियों से ही विरह-वेदना जीवित है ।

इसका दूसरा अर्थ ऐसे भी हो सकता है—मानव दुःख मे स्वयं ही विनष्ट हो जाता पर उसकी मधुर स्मृतियो के अमृत कण ही दुख को सहन करने की शक्ति देते है, जिस से वह दुख भी मधुर हो उठता है ।

उस प्रियतम का सुख का खजाना है जिसपर मैंने वेदना रूपी ताले डाल दिए है और जिनको वह खोल नही सकता—मैं उसकी प्रेमिका-साधिका हूँ, इसलिए वह आनदमग्न रहनेवाला प्रियतम मेरी वेदना से निरपेक्ष नही रह सका, मेरी वेदना से वह भी व्यथित है । वह ब्रह्म सौरभ का सागर है तो मेरा जीवन वसतऋतु-रूपी किनारा है ।

विशेष—'उसका सुख··· ··· ···ताले डाले' —भगवान भक्त के वश में होते है ।

[मुझे न जाना अलि ।]

अर्थ—मेरी किसी वस्तु को उसने महत्व दिया हो या न दिया हो किन्तु यह तो नितांत सत्य है कि उसे मेरे आँखो के पानी—विरह-साधना—की लाज रखनी पडी है । यद्यपि मेरा उससे साक्षात्कार नहीं

हुआ तथापि प्राणों के स्पंदन में उसीके पगों की आहट है, मेरे मन में जब उसकी स्मृति का उदय होता है तो मैं आत्म-विस्मृत हो जाती हूँ—उसकी स्मृति का उदय ही मेरी आत्म विस्मृति है। उसके नीरव मंदिर—शून्य लोक—में मेरा भौतिक अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है, अतः साक्षात् अनुभव का अवसर ही नहीं आता। अतएव हे सखी! उसके प्रेम सम्बन्धो का यह खेल कितना निर्दय-निष्ठुर है—एक ओर उसने मुझमें अपने प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया है और दूसरी ओर साक्षात मिलन नही हो सकता। यही दुर्भाग्य है और उसकी निर्मम निष्ठुरता।

विशेष—समस्त कविता मे गहन-गूढ व्यन्जनाएँ है और अर्थ विशेष आयास सापेक्ष है।

: २५ :

अवतरण—ब्रह्म को पाना कितना कठिन है !

[तुमको क्या देखूं चिर नूतन ।]

अर्थ—हे क्षण-क्षण नूतन सौन्दर्य से प्रदीप्त रूप-राशि ! तुमको देखना मेरे लिए असम्भव है । क्योंकि तुम 'तिल-तिल नूतन'[1] हो रहे हो—तुम्हारा आदि-अंत नहीं कहा जा सकता, तुम अनादि-अनन्त हो ।

देखो न जिस आँख की काली पुतली में लघुतम तिनको से लेकर विशाल अम्बर तक प्रतिबिम्बित होता है, पूर्वकालीन स्मृतियाँ शांत अवस्था मे जिसमे स्वप्न या आँसू का सागर भर देती है, (अथवा इसका दूसरा अर्थ) जो लोचन अपने स्वप्नो से जागकर अर्थात जिनके खुलते ही जड प्रकृति मे रूपो का सागर उमड़ने लगता है; जिनके बिना संसार का सारा रूप-ऐश्वर्य अपना अस्तित्व खो देता है, (क्योंकि नेत्र न हो तो रूप का अस्तित्व ही क्या) उन पुतलियो को ही मै नही देख पाती तब तुम्हे कैसे देख सकूँ—तुम्हारे कारण दूसरी वस्तुएँ दृष्टिगत होती है परन्तु तुम दिखाई नही पड सकते ।

विशेष—बिहारी का यह दोहा प्रसिद्ध है—

ज्यो आँखिन सब देखिए आँखि न देखीं जाहि ।

[तुमको पहचानूँ क्या सुन्दर !]

अर्थ—जब मैं अपना हृदय—जिससे अंतरंग और कौन हो सकता है—न जान पाई तो मै तुम्हे कैसे पहचान सकती हूँ, जो मेरा

---

१. विद्यापति की भाषा में ।

सुख-दुःख का जन्म स्थल है, जो मेरा अपना अंतरंग है, जो हृदय शून्य (जड़ता) मे भी स्पंदन के पुष्प खिला देता है (अथवा दूसरा अर्थ जो एकाकीपन मे, जड़ शरीर मे भी रोमांच पैदा कर देता है) जो मेरे प्राणो का आधार है—जव ऐसे सुन्दर मन को ही जान नहीं पाई तो जिस मन के द्वारा वह सुन्दर जाना जा सकता है, उसे कैसे पहचान सकती हूं ?

[तुमको क्या वांधू छाया तन]

अर्थ—जव मैं अपने मन को ही वांध नही पाई तो तुम अरूप-निराकार को कैसे वांधू ? तेरे विरह की निशा मे जो मन दिन मानता है—विरह से मन शुद्ध, पवित्र और प्रकाशित होता है, जो निर्वन्ध-उन्मुक्त होते हुए भी मेरे लिए वन्धन है, जो अणु सम अल्पाकार है पर जो सारे जगत को व्याप्त कर लेता है—जो अणु रूप होते हुए भी विभुरूप है, जिसकी चेतना और शरीर के सगम का नाम जीवन है—ऐसे मन को जव मैं न वांध सकी तो जिसको मन से ही वाधा है अथवा मन से वावना होता है, उस अरूप—(जो साकार होने से सरलता से वंधता)—को वांधना और भी कठिन है ।

विशेप—'जो स्वच्छद··· ··· ···" मन की स्वच्छदता, चचलता ही मानव का वन्धन है मन को। वांध लेना, उसका निरोध कर लेना ही मुक्ति ।

[तुमको क्या रोकूं चिर चचल]

अर्थ—हे सदैव चचल (गतिशील) मैं तुम्हे कैसे रोक सकती हूं ? जव मै चचल पल (समय) को ही रोक नही पाती ।

पल की शृंखला ही जीवन-जगत है—पल का निर्माण आविर्भाव ही इस ससार का पर्याय है, और इसका तिरोभाव अथवा विनष्ट हो जाना ही प्रलय है । मेरी पलको का द्रुतगति से उठना-गिरना ही

जिसकी गणना अथवा माप-मान है—पलको के उठने-गिरने से पल के उत्थान पतन की गणना हो सकती है। (ऐसा भी कहा जा सकता है कि) एक पल का आना-जाना मानो पलको का उठना-गिरना है। मानव ने अपनी सातता से ही जिस पल को अनन्तता और नवीनता प्रदान की है, जब ऐसे लघु पल को ही नहीं रोक सकी तब इस पल के भी लक्ष्य, तुझ चिर चचल को रोकना असम्भव-असाध्य है।

विशेष—इस कविता मे ब्रह्म के लिए 'चिर नूतन,' 'सुन्दर,' 'छायातन,' तथा 'चिर चचल,' शब्दो का प्रयोग साभिप्राय है। इनसे रूप गुण का वोध होता है और भाव वोधन मे सहायता मिलती है।

: २६ :

अवतरण—कवयित्री को अपनी साधना की सफलता का आभास हो रहा है।

[प्रिय गया है लौट रात]

शब्दार्थ—धवल=श्वेत

अर्थ—चन्द्रिकार्चित निशा—नायिका का प्रियतम लौट गया है इस लिये वह (चन्द्रिका के कारण) श्वेत तथा ओसयुक्त रात्रि अलसाए चरणों से चल रही है—धीरे-धीरे बीत रही है। वह मूक-मदिर अपनी वियोगमयी स्थिति में लीन है तथा हृदय में प्रियतम की मधुर पीड़ा को सँजोये हुए अश्रु बहा रही है।

विशेष—१. 'सजल' 'धवल' आदि चाँदनी रात के विशेषण, जहाँ चन्द्रिकास्नात रात्रि का मादक वातावरण उपस्थित कर रहे हैं वहाँ वियोगिनी साधिका की साधना को भी।

२. इन पंक्तियों में एक दम नूतन संगीत ध्वनित हुआ है।

[सौरभ मद ढाल शिथिल]

शब्दार्थ—वकुल=मौलश्री

अर्थ—अपने प्रियतम के स्वागत की तैयारी में अपना सौरभ बिखेर, वकुल और प्रवाल के पत्ते बिछाकर प्रतीक्षा करती-करती चंचल वायु भी प्रियतम के लौट जाने से निश्चल सी हो रही है।

विशेष—'सौरभ······वकुल'—साधिका प्रियतम को सर्वस्व समर्पित कर चुका है, यही इस से व्यजित होता है।

[युग-युग जल मूक विकल]

शब्दार्थ—स्नेह=प्रेम, तेल ।

भावार्थ—युग युगान्तरों से गम्भीरता तथा व्याकुलता से अपने प्रेम (अथवा तेल) द्वारा दीपक के समान जलते-जलते, साधना करते-करते, साधिका की आत्मा अब समाधिस्थ हो रही है और उसका प्रेम सफल-सा हो रहा है ।

विशेष—'मूक' शब्द साधना की गम्भीरता को प्रगट कर रहा है । 'स्नेह' तरल ही होता है । यहाँ यह प्रेम की सात्विकता को प्रकट कर रहा है ।

[किस के पदचिन्ह विमल]

शब्दार्थ—नीर जात=कमल ।

भावार्थ—साधिका की कमलवत आँख, तारों के रूप में अंकित, लौटे हुए प्रियतम के, पदचिन्हों को गिन रही है ।

विशेष—'विरल' शब्द इस तथ्य का द्योतक है कि चाँदनी में तारे कम होते हैं । यहाँ चित्रमयता भी दर्शनीय है ।

[किस की पद चाप चकित]

शब्दार्थ—पदचाप=पाँव की आहट ।

भावार्थ—न जाने किस अलौकिक प्रियतम की आहट पाकर युग-युग से सुप्त जीवन में भी जागृति आगई है । एक-एक साँस में ताजगी और उल्लास समा गया है—साधना सफल-सी होती प्रतीत हो रही है ।

विशेष—प्रकृति के अर्थ में श्वास का अर्थ होगा वायु । इस कविता में सारा तथ्योद्‌घाटन अप्रस्तुत रूप में विशेषणों के माध्यम से हो रहा है ।

अवतरण—विरहिणी साधिका अपने भौतिक अस्तित्व को लीन कर आध्यात्मिक जीवन—शुद्ध भावनामयी स्थिति को प्राप्त करने की कामना-प्रार्थना करती है।

[एक वार आओ इस पथ से]

शब्दार्थ—कुंतल=वाल। यामिनी=रात्रि। श्रमकण=पसीने की बूंद। अधर=ओष्ठ, आकाश।

भावार्थ—हे प्रियतम तुम एक वार मलय पवन का रूप धारण करके इस पथ से आओ। आकाशवत् अधरों पर किरणों की मुस्कान, प्रतीक्षा करते-करते विरहजन्य मानसिक क्लान्ति से युक्त—मुखमण्डल पर ओसविन्दुरूपी श्रमकण तथा सुख-दुख के स्वप्नो को लेकर मेरी विरहरूपी यामिनी तंद्रिल (नीद आने से पूर्व की स्थिति) है—विरह और प्रतीक्षा से शिथिल है। श्रात-क्लांत है, तुम इसके चचल वालो को अपने सुखद स्पर्श से सौरभमय कर सुला दो—अब यह महा विरह, प्रतीक्षा की घड़ियाँ, मेरे लिए असह्य हो गई है अतएव मेरी यही आकांक्षा है कि इस विरह-भावना को चिर विश्राम दो।

विशेष—१. 'मलय पवन' रात्रि के प्रियतम रूप मे है।

२. 'अलसाई है विरह यामिनी'—यहाँ विरह की उन्नत स्थिति का वर्णन है। मानो साधिका विरह मे समाधिस्थ हो रही है।

३. श्लेप तथा सागरूपक अलकार है।

४. मलय-पवन के लिए तथा प्रियतम के 'हरजाई' रूप के लिए 'चचल' विशेपण सार्थक है। रवीन्द्रनाथ ने भी परमात्मा को एक

स्थान पर 'चिर चचल' तथा मानव को 'चचलेर सहचर' कहा है।
.ह्म गत्यात्मक है क्योकि उसका रूप विश्व भी गत्यात्मक है।

[मृदु नभ के उर मे छाले से]

अर्थ—मेरी विरह-यामिनी को चिर-विश्राम देने के लिए अनुकूल वातावरण चाहिए। अतएव ये तारा-दीप बुझादो। ये आकाश के कोमल हृदय पर पडे हुए फफोलो के समान है—अत्यन्त दुखदायक हैं—और ये प्रत्येक क्षण कडा नियंत्रण रखते हैं। ये करूणा विहीन निर्मम-निष्ठुर हैं—ये सर्वथा निरपेक्ष भाव से, मानो उपहास करते से, मानव के दुखो को देखते रहते है, ये विना स्नेह (प्रेम, तेल) के जल रहे हैं और इसलिए ये भस्म भी नही बनते (क्योकि साधारण दीपक अपने को जलाकर दूसरों को प्रकाश देता है)—इनमे किसी प्रकार भावो का स्पदन नही है, मानो जडवत् चेतना से रहित है इसलिए इनपर कोई भी परवाना नही रीझता—ऐसे तारा-दीपो को हे मलयानिलस्वरूप प्रियतम तुम बुझा दो।

विशेष—१. वस्तुत. पहले दीप जला करता है, फिर पीछे परवाना। स्नेह-करूणा रहित व्यक्तियों मे वह तेजस्विता कहाँ कि वे दूसरों को आकर्षित कर सके।

२. ये दीप ससार के लिए ही नही विरहिणी के प्रिय-मिलन मे वाधक हो सकते हैं। इसीलिए मानो विरहिणी की यही कामना है—

पियतम को भाता है
तम के परदे मे आना
हे नभ की दीपावलियो
तुम पल भर को बुझ जाना

—नीहार

[तम हो तुम हो और विश्व मे]

अर्थ—मेरी एक मात्र यही कामना है कि कोई प्रकाश का कण न रहे, समग्र विश्व मे अन्धकार, तुम और मेरे जीवन की शून्यता ही रहे—आत्मा-परमात्मा (प्रेयसी-प्रियतम) मिले और अन्धकार और शून्यता के कारण न हम किसी को देख सके और न कोई हमको। ऐसी अन्धकारावस्था में मेरी छाया न रहेगी (क्योकि जहाँ प्रकाश होता है वही व्यक्ति की छाया होती है)—मेरा अस्तित्व-व्यक्तित्व समाप्त हो जाय और इसके साथ पार्थिव जगत के सभी उपकरण और सस्कारादि भी लय हो जाएं। तेरी चेतना मे अपने भौतिक अस्तित्व को लीन करके, तुझ—शीतल-सुगन्धित पवन से—एकाकार होकर, मैं सौरभवत—चिरतन-आनंदमय—जीवन प्राप्त करूं—भौतिक अस्तित्व को समाप्त तथा शुद्ध भावनामय स्थिति को पाकर तुझ मे लीन हो जाऊं।

विशेष—

१. यहाँ विशेषण इस प्रकार के है कि प्रेयसी-प्रियतम का अभि-सार वर्णित हुआ है।

२. दीपक जलकर राख हो जाता है, उसकी सुगन्धि वातावरण मे रह जाती है।

३. प्रियतम के निश्वास भी क्या मलय-पवन से कम हो सकते है?

अवतरण—प्रणय के जीवनका सार-स्वंस्व विरह अथवा जलने मे है और सामान्य संसार इस श्रेयस्कर रहस्य के माधुर्य-महत्व से अनभिज्ञ है। विरही के जलने को ससार मतवालापन समझता है किंतु इस पागलपन (Divine madness) का भी अपना माधुर्य है—यह वह नही समझ सकता।

[क्यों जग कहता मतवाली]

अर्थ—जब मैने उस अलौकिक प्रियतम के विरह मे ही जीवन का वास्तविक रहस्य पा लिया और इसी विरह के अनुपम आदर्श शलभ के प्रति जोकि अपने प्राणो को इष्ट पर न्योछावर कर जीवन के सार को पा लेता है—मेरी श्रद्धा-भक्ति है तो इस मे आश्चर्य कैसा ? यदि मै ऐसे आदर्श विरही के पंखो को चुनकर, उसकी चिर काम्य वस्तु दीपशिखा को उन पर अंकवा दूं, तो इसमे मत-वालापन कैसा ?

विशेष—विरहिणी का झुलसे पंखो पर दीपशिखा का अंकवाना ऐसा ही है जैसे किसी भी मृतक की स्मृति में, आदर देने के लिए उसका स्मारक स्थापित करना। साधिका और शलभ दोनो एक ही पथ—प्रणय पथ—के पथिक है, दोनो जलते है, तब शलभ के प्रति ऐसा आदर स्वाभाविक है।

[क्या अनुनय में मनुहारो में]

शब्दार्थ—अनुनय=मनावन, मनुहार=मनाने के लिए की जाने वाली खुशामद, विनती।

अर्थ—जब मैंने अपने प्राणों मे ही प्रिय के रूप को आत्मसात् करलिया है तब ऐसी स्थिति में प्रेम की औपचारिक विधियाँ—मान मनौवल, प्रेमोद्गार, आँसू, आवाहन (मनसा आमंत्रण),अभिसार आदि —व्यर्थ है।

[भावे क्या अलि !]

अर्थ—हे सखी ! प्रियतम के वियोग में वसंत अच्छा नही लग सकता। क्योकि जीवनमे यह मधुदिन-वसंत का दिन, चहल-पहल आमोद-प्रमोद का दिन अस्थायी है। फिर भला इसमे क्या आकर्षण हो सकता है ? यह भँवरे की मधुर गुंजार—मस्ती से भरा हास-विलास—तथा मतवाली मदिरा—भौतिक सुख—सब क्षणभगुर हैं। अतएव इनके प्रति मोह-आकर्षण का प्रश्न नही उठता जबकि मेरे विरही जीवन रूपी पतझड की डाली-डाली—प्रत्येक क्षण—मे स्थाई वसंत है—विरह की साधना मे ही मुझे जीवन का चिर-चरम माधुर्य प्राप्त है।

[जो न हृदय अपना विधवाऊँ]

अर्थ—प्रियतम के स्वागत के लिए पुष्पहार की अवश्यकता है। हार वनाने के लिए मेरे पास केवल दो वस्तुऐं है एक हृदय (फूलके रूप मे) दूसरा निश्वास (तार-धागा)। इस प्रकार निश्वासरूपी तारमे यदि मैं हृदयपुष्प को न पिरो दूँ तो फिर हार कैसे वन सकता है— विरह मे जल-जलकर ही मै उस महत्व तथा सौन्दर्यमय जीवनको पा सकती हूँ जो प्रियतम के उपयुक्त वन सके। हार वनानेके सामान्य उपकरणो—कलियो, सूत्र—का प्रयोग मैं इसलिए नही कर सकती क्योकि कलियाँ प्रियतम की स्मित से स्नात है और तारो में प्रियतम की दृष्टि आभासित है।

विशेष—दृष्टि का भी तार वन जाता है—यहाँ कवयित्री का सूक्ष्म सूझ का पता चलता है।

[मैंने कब देखी मधुशाला ?]

शब्दार्थ—विद्रुम सी हाला =मूंगे के समान लाल मद्य ।

अर्थ—मेरे लिए मधुशाला और उससे सम्बन्धित उपकरण प्याला-हाला सभी अपरिचित रहे हैं और मेरे मन मे कभी इनकी इच्छा नही जगी—सासारिक उपभोग वृत्तियॉ मेरे लिए तुच्छ हैं। मै तो केवल अलौकिक प्रियतम की मुस्कराहट मे ही अपनी आँखो को स्निग्ध करती रही हूँ ।

विशेष—अन्तिम पक्तियो मे लौकिक रूपक की रुचिरता देखते ही बनती है । यहाँ 'उनकी स्मित' मानो साकी की हँसी है । सुरापायी सुरापान नही करते वे तो साकी की मुस्कान पीते है, साकी मानो अपनी मुस्कान घोलकर पिलाता है। यहाँ तो कवयित्री ने यह कहकर कि 'स्मित मे केवल आँखे धो डाली' और भी कमाल कर दिया है।

प्रवतरण—चरम महत्व को प्राप्त करने का मार्ग, त्यागजन्य सेवा मे है। स्वय दु:ख उठाकर विश्व का लाभ करना यही सात्विक प्रेरणा है।

[जाने किसकी स्मित रूम झूम]

अर्थ—न जाने किस रहस्यमय व्यक्ति (शक्ति) की मुस्कान कलियो का स्पर्श कर जातीहै—उनके मुख पर बिखर जाती है। जिससे कलियो के छोटे-से हृदय मे सुप्त (साथ ही सोया हुआ) सौरभ रूपी शिशु अचानक ही जगकर और फिर सम्भल कर अपने छोटे-छोटे कोमल पदो से चलता हुआ और कोमल पखुरियो रूपी द्वार खोलकर, अपनी माता कलिका को सुप्तावस्था मे ही छोडकर चल देता है और वाह्य वातावरण मे रम जाता है (विश्व मे घूमने चला जाता है)। कलियो से निकला हुआ सौरभ तो समस्त संसार को सुरभित कर देता है किंतु कलिका मुरझा जाती है।

विशेष—माता के पास सोया हुआ शिशु उसको सोता छोडकर धीरे-धीरे दबे पाँव द्वार खोलकर बाहर चला जाता है और माता बालक के वियोग मे मुरझा-सी जाती है—यहाँ यही रूपक है।

[जाने किसकी छवि रुम झूम]

अर्थ—न जाने किस अज्ञात शक्ति की काति अनायास ही मेघों का स्पर्श कर जाती है। परिणामत. मथर गतिगामिनी जल की चकित बूंदे आकाश स्थित मेघ को व्याकुलता से छोड पृथ्वी पर ढुलक पडती है। मेघ विद्युत रूपी दीपक को लेकर खोज करते है और सागर के

समान गम्भीर घोष करते है—जल विंदु-शिशुओं को पुकारते है। पर सब व्यर्थ जाता है। वह बूंदे तो प्राप्त नही होती पर इनका अपना अस्तित्व धुए के समान नष्ट हो जाता है।

विशेष—अंतिम पक्ति मे अंग्रेजी के मुहावरे (to end in smoke) का प्रभाव है।

[जाने किसकी ध्वनि रुम झूम]

भावार्थ—न जाने किस रहस्यमय शक्ति की ध्वनि पर्वतो को आदोलित कर जाती है। जिससे पर्वतो के प्रस्तरमय कठोर जीवन की सचित आकांक्षाए अश्रु-निर्झरो के रूप में फूट निकलती है।

पर्वतो का अणु-अणु अंग-प्रत्यंग—भावना-द्रवित हो इस प्रवाह मे अपने हृदय का स्नेह (जल, अश्रु) मिलाते है—योग देते है। इस प्रकार वह प्रस्तर-जात निर्झर मस्ती मे झूमता हुआ अनेको को तृप्त करता हुआ अज्ञात देश की ओर चल पड़ता है। इस प्रकार वह पहाड स्वय सूखा हुआ रह जाता है किन्तु अपने स्नेह-निर्झरो से दूसरों को तृप्त करता है, लाभ पहुचाता है।

विशेष—"उनके जड...पुलकित"—मनुष्य की संचित इच्छाएं आवेश की स्थिति मे आसूओ मे फूट उठती है।

[जाने किसकी सुधि]

भावार्थ—न जाने किसकी याद मेरी पलको का स्पर्श कर जाती है। इस मादक स्पर्श से हृदयरूपी कोष के भाव-मोती पिघल-पिघल कर रुपहले आंसुओ मे परिणत (द्रवित) हो जाते है। ये अपार आंसू रोके नही रुकते और अनवरत प्रवाहित होते हुए धूलि कणो मे मिल जाते है। धूल जैसे तुच्छ कण की सहायता के लिए भी अपना नाश कर लेते है।

विशेष—इस समस्त कविता को रूपक अलंकार ने अद्भुत रूप प्रदान कर दिया है।

अवतरण—इस मानव जीवन का भी अपना महत्व है। अपने निजत्व को बनाए रखे विना प्रेम का, प्रियतम की सुधि का, आनन्द नही लिया जा सकता।

[तेरी सुधि बिना क्षण-क्षण सूना]

शब्दार्थ—सुधि=याद, होश आदि।

अर्थ—प्रियतम तेरी याद के विना यह मानव-जीवन व्यर्थ है। इस रज निर्मित सुन्दर देह मे मेरा रोमांचित व्यक्तित्व इस प्रकार प्रतिविम्वित है, जिस प्रकार दर्पण मे छाया। जिस प्रकार दर्पण के विना शृंगार-सौध सूना हो जाता है। उसी प्रकार यह प्रेम—लोक—जो आत्मा-परमात्मा का सयोग-स्थल है—इस सुन्दर मानव शरीर के विना सूना हो जाता है। मानव-शरीर का भी अपना महत्त्व है और इसीके द्वारा तो प्रियतम की सुधि हो सकती है।

[सपने ओ-स्मित जिसमें अंकित]

शब्दार्थ—आनन=मुख। अवगुण्ठन=घूँघट। अपलक=खुला हुआ, नग्न।

अर्थ—सुख-दुःख के ताने-वाने से वुना हुआ तथा पूर्वजन्म के स्वप्न और स्मित—सस्कारो—से अंकित इस निजत्व (आत्म-चेतना ego अपने-पन की भावना) के घूँघट के विना अनावृत मुख—आत्मा—सुशोभित नही हो सकता—निजत्व (मै हूँ) की चेतना के विना मेरा अस्तित्व, अपना सौन्दर्य खो बैठता भी है। और यदि यह

वह हो जाय तो मैं स्वय वह हो गई। और मानो तुममे विलीन हो गई। ऐसी अवस्था मे तुम्हारी सुधि का दृश्य ही नही उठता, क्योकि प्रेम-सम्बन्धो, सुधि आदि के लिए जहाँ का आधार आवश्यकता है, वहाँ द्वैत (पृथकता) की स्थिति भी अनिवार्य है।

[जिनका चुम्बन चौंकाता मन]

अर्थ—हृदय रूपी उपवन मे नाना प्रकार के भाव-कुसुम खिलते (उमडते) रहते हैं। किन्तु यदि मधुरभाव रूपी फूलो मे सुसज्जित हृदय-उपवन मे भूल रूपी शूल न हो तो, फूल रूपी माधुर्यमयी भावनाओ का वास्तविक परिज्ञान ही नही होगा, क्योकि केवल एक पक्ष फूलो, सुन्दर भावनाओ—से परिचित मनुष्य इस पक्ष के वास्तविक महत्त्व को नही जान सकता, विपरीत पक्ष—भूल-शूल—आकर प्रथम पक्ष के महत्त्व की चेतना जगा देते हैं। अतएव जिन कांटो का स्पर्श फूलो के सौन्दर्य मे परिज्ञान कराता है—जिन भूलो द्वारा मधुर भावनाओ का ज्ञान होता है, उनके बिना हृदय रूपी उपवन शून्य हो जायगा।

[दृग पुलिनों पर हिम से मृदुतर]

शब्दार्थ—पुलिन=किनारे। हिम=ओस।

अर्थ—यदि मानव-मन रूपी सागर में स्थित आँसू रूपी मोती जो ओस से भी कोमल है हृदय-गत करुणा रूपी लहरो मे बहकर भावोद्रेक मे, नेत्रों के किनारो पर न आजाये—यदि आँसू न हो, तो यह समस्त समृद्धि का आकर (खान) जीवन सूना है।

[जिनका रोदन जिसकी किलकन]

शब्दार्थ—किलकन=हँसी।

अर्थ—यदि इस जग रूपी विस्तृत आँगन मे विरह-मिलन

रूपी शिशुओ की क्रीड़ा, रुदन-हास—न हो तो यह आँगन सर्वथा सूना हो जाए। विरह-जन्य दुख तथा मिलन-जन्य सुख दोनो मे ही जीवन का सौन्दर्य है।

विशेष—इस समस्त कविता को साग-रूपकों ने अद्भुत स्वरूप प्रदान कर दिया है।

अवतरण—इस कविता में साधक की उस स्थिति का वर्णन है जब आत्मसाक्षात्कार या ज्ञान होने पर माया के कारण उत्पन्न द्वैतभाव का विनाश हो जाता है।

[टूट गया दर्पण निर्मम]

शब्दार्थ— दर्पण=शीशा, भौतिक अस्तित्व का ज्ञान, माया।

अर्थ— हे निर्मम ! वह दर्पण—माया (मेरे तेरे का ज्ञान अहंकार)— जो तुम ने मुझे भेंट मे दिया वह तुम्हारे ही द्वारा टूट गया।

इस दर्पण मे मेरा प्रतिविम्व हँसता था— मै मायापूर्ण थी – जो मेरे लिए दुःख का कारण वना। ममता-माया—मेरे तेरे की वन्धनमयी स्थिति—ही मेरे दुख का कारण थी। इस प्रकार इस हर्ष-विषाद से यह सारा ससार अङ्कित हो गया। जिसके पर्दे मे मै और तुम आँख मिचौनी खेलते रहे— जिसके कारण मानवात्मा आवागमन मे वन्धी रहती है—वह नष्ट हो गया।

विशेष—१ जव दो होते है तभी तो आँख मिचौनी का खेल खेला जा सकता है। जव आत्मा-परमात्मा में भेद—अज्ञानमयी स्थिति अथवा माया रहती है तभी यह खेल सम्भव है— जव माया का परदा हट जाता है, प्रिय से अभेद हो जाता है. तो फिर यह खेल कैसा ?

२. नददास ने भी दर्पण का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। यथा—

'वा गुन की परछाह री माया दर्पन बीच"

[अपने दो आकार वनाने]

अर्थ—अपने एकाकीपन को दूर करने के लिये, अपनी रमण की इच्छा को पूर्ण करने के लिए ईश्वर एक से दो हुआ और अज्ञान पर आश्रित संसार की रचना हुई। किंतु जिस पार्थिव अस्तित्व (दर्पण) की इस प्रकार रचना हुई वह आज टूट गया है— द्वैत की स्थिति लुप्त हो गई है।

विशेष— प्रसिद्ध ही है—सः एकाकी न रमतः

तथा 'एकोऽहम् वहुस्याम—मैं एक से अनेक हो जाऊं', ऐसी इच्छा ईश्वर ने प्रकट की।

[कैसा पतझर कैसा सावन]

अर्थ—भेदवुद्धि, माया के नष्ट होते ही, पतझर-सावन रात-दिन, मिलन-विरह, हर्ष-विषाद तथा देशकाल का ज्ञान आदि, नाना रूपात्मक जगत— जिससे पार्थिव अस्तित्व की स्थिति व्यक्त होती है— सव लुप्त हो गया, सव असत्य भासित होता है। आज तो केवल एक ही सत्य रह गया है और एक ही चेतना रह गई है कि ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है।

[किस में देख सँवारूँ कुन्तल]

शब्दार्थ— कुंतल=वाल। अंगराग=सुगंधित लेप या उवटन। चल=चंचल।

अर्थ—प्रेम सम्वन्धो और शृंगारादि के कारण दूसरे को रिझाने के लिये द्वैत की स्थिति आवश्यक है किन्तु जव अपने अस्तित्व—अहंकार की चेतना— के लोप होने से अद्वैत हो गया तो यह शृंगार—वेशभूषा, अंगराग के पुलकमय प्रसाधन, प्रेम की कल कल्पनाओं से

नयनो को अजित करना कैसा और रूठना-रीझना अथवा प्रेयसी-प्रियतम का अभिनय कैसा ?

[आज कहाँ मेरा.........अपनापन]

अर्थ—आज मेरी अहकार-भावना लुप्त हो गई है, और यही वह आवरण था जिसके पीछे तुम छिप जाते थे। क्योकि जब तक मेरे-तेरे, मोह-ममता अर्थात माया रहती है तब तक प्रियतम दूर रहते है। यह अहकार ही मेरे आवागमन के बंधन का कारण था जो तुम से एकरूप नही होने देता था। पर यही तुम को प्राप्त करने का साधन-माध्यम भी था क्योकि एक होने के लिए जहाँ अद्वैत का आभास आवश्यक है वहा द्वैत की स्थिति भी। हे प्रिय अब उस अहकार के आवरण—जिसके कारण विरह-मिलन, सुख-दुख की स्थिति थी—के लोप हो जाने पर आज तुम्हारा सुख मुझमे और मेरा दुख तुम मे लुप्त हो गया है।

विशेष—"रहस्यवादी कविता में जहाँ लौकिक वस्तुओं और व्यापारो के प्रतीक अपनाए गये है वहाँ तो उनमे बोधगम्यता है किंतु जहाँ कवि और अज्ञात प्रियतम के बीच का गोपनीय सम्बन्ध ही व्यक्त हुआ है वहाँ स्वभावतः दुर्बोधता आ गई है। कही-कही आध्यात्मिक साधना के सूक्ष्म मार्गो और अनुभूतियो की भी अभिव्यक्ति हुई है जो सामान्य जन की अनुभूतियो से भिन्न है। अतः सामान्य जन के लिये वे दुर्बोध्य है। निराला और महादेवी की कविता में इस तरह की दुरूह और कष्टसाध्य भावाभिव्यजना बहुत अधिक हुई है।...इस कविता मे ब्रह्म और जीव का अद्वैतरूप दिखलाया गया है। माया के कारण जो द्वैत-रूप दिखलाई पड़ता है, वह भ्रमपूर्ण है। ज्ञान के बाद जीव का वह भ्रम टूट जाता है। माया ब्रह्म का ही अविद्या रूप है और जीव उसी के कारण सुख-दुख के बंधनों में फंसता है। इस आध्यात्मिक तथ्य का

चित्रण महादेवी ने प्रतीक और अन्योक्ति की पद्धति से किया है ।

"आत्मसाक्षात्कार या ज्ञान होने के बाद माया के कारण उत्पन्न द्वैतभाव के मिट जाने की अनुभूति इस कविता मे व्यक्त हुई है । यह अनुभूति सामान्य पाठको की अनुभूति से भिन्न कवयित्री की अपनी विशिष्ट अनुभूति है । पाठक जब तक अद्वैतवाद के दर्शन को अच्छी तरह नही समझ लेता इस कविता को नही समझ सकता ।[1]"

मेरे विचार मे यहाँ लौकिक रूपक फिर भी सुन्दर है ।

---

१. शम्भूनार्थसिंह

: ३२ :

अवतरण—जिस नायिका के प्रियतम आने वाले हैं ऐसी रजनी रूपी नायिका को सखी शृंगार करने को कह रही है।

[ओ विभावरी... ... ...भार री।]

शब्दार्थ — विभावरी=रात्रि। चिकुर=बाल। अंगराग=सुगंधित लेप।

अर्थ—हे रजनी-नायिका! तुम्हारे प्रियतम आने वाले हैं इस लिए मांगलिक शृंगार करले। तू शरीर पर चाँदनी रूपी अंगराग तथा मांग में पराग रूपी सिंदूर लगा ले। अपने अंधकार रूपी कोमल-स्निग्ध खुले बालों को किरणों के धागों से संवार ले।

[अनिल घूम देश देश।]

अर्थ—यह पवन रूपी दूत कितने देशों को लाँघकर, कितना पथ चल कर, वर्षा के मेघ स्वरूप प्रियतम का संदेश लेकर आया है। तू इस उपलक्ष्य में ओस रूपी मोतियों को न्योछावर कर।

[लेकर मृदु उर्म्म वीन।]

शब्दार्थ—उर्म्मवीन=लहर रूपी वीणा। मलार=वर्षा ऋतु में गाया जानेवाला राग।

अर्थ—बादलों के गर्जन के रूप में प्रियतम के कदमों की आहट सुनाई दे रही है—प्रियतम आ रहे हैं—अतएव तू लहर रूपी वीणा पर मधुर-मार्मिक तथा नूतन स्वागत-गान मलार राग गा।

विशेष—वर्षा ऋतु मे लहरो का अधिक घोष करना स्वाभाविक है।

[वहने दे ... ...तिमिर भार।]

शब्दार्थ—सुरभि=सुगंध।

अर्थ—जब प्रियतम आ ही रहे है तो निराशा के अधकार को घुल जाने और वियोगाग्नि के अंगारो (तारो) को बुझ जाने दे। उल्लासमग्न होकर शृंगार कर ले। सुरभि रूपी सुन्दर दुपट्टा ओढ़ ले तथा मौलश्री की माला पहन ले।

विशेष—१. रात्रि के समय मौलश्री के फूल झड़ा करते है।

२. इस गीत में परम्परा मुक्त नूतन संगीत की वहार है।

: ३३ :

अवतरण—इस कविता में महादेवी उस कर्मण्य-करुणाशील व्यक्ति का अभिनन्दन करती है जिसने स्वय दु.ख सहन करके दूसरो को सुख प्रदान किया हो।

[प्रिय जिसने दुख पाला हो।]

अर्थ—जिसने जीवन मे करुणा (सवेदना) का पोषण किया हो, जिस व्यक्ति को पर-दुख कातरता के कारण वेदना (पीडा) भी सुगधित चदन के लेप की भांति वांछनीय हो तथा शीतल प्रतीत होती हो, तूफानो की छाया—भयंकर कठिनाइयाँ—जिसे प्रिय के आलिगन अथवा प्रिय-स्पर्श की भाति सुखद प्रतीत हो तथा जीवन की असफलताएँ भी विजय का सोपान बनकर आएँ और इसीलिए हार भी जय से अधिक स्पृहणीय हो उठे, असफलता को भी जो सहज रूप में, स्वाभाविक प्रसन्नता से ग्रहण कर सके तथा दृढ आशा—उत्साह से अपने गतंव्य पथ की ओर अग्रसर हो, हे प्रियतम, मुझे वरदान दो कि ऐसे व्यक्ति का ही स्वागत मेरा यह सवेदनापूर्ण छोटा-सा आंसू हृदय का हार बन कर सके।

विशेष—'पाला हो' शब्द साभिप्राय है। इससे यह प्रकट होता है कि वेदना व्यक्तिगत अभावजन्य नही है अपितु दूसरो के दु.खो को दूर करने के लिए, व्यक्तिगत सुख का परिहार करके अपने हृदय में दुःख का पोषण किया गया है। अपने हृदय को भी वेदनामय किया गया है क्योकि घायल की गति घायल ही जान पाता है।

[जो उजियाला देता हो]

अर्थ—जो व्यक्ति दीपक के समान स्वयं जलकर दूसरो को आलोक प्रदान करे—वेदना से प्रेरित होकर दूसरो का उपकार करे —जिसने अपनी सुख सुरा को इस जगत रूपी मधुशाला मे बाँट दिया हो और जिसने सहज प्रसन्नता से अपनी सुख-सुरा में दुख-विष को भर लिया हो, हे, प्रियतम ! मुझे वरदान दो कि मेरी शुभेच्छाओ का अमृतपूर्ण प्याला उस कृती-बलिदानी व्यक्ति के प्रति समर्पित हो ।

विशेष—यह समस्त कविता महादेवी के असीम करुणाशील (संवेदनशील) व्यक्तित्व तथा भावनाओं की सजग परिचायक है। इसी कारुण्य भावना की द्योतक निराला की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

मां मुझे वहाँ तू ले चल ।
देखूंगा वह द्वार —
दिवस का पार —
मूर्छित हुआ पड़ा है जहाँ
वेदना का संसार ।

—परिमल

अवतरण—यद्यपि आत्मा-परमात्मा में अंतर नही तथापि सत्स्वरूप की विस्मृति होने से, अज्ञान के कारण हम इस अंतर को सत्य समझते हैं। अपने स्वरूप को पहचान तथा अपने भीतर की ज्वाला-साधना में जल-तपकर उस परम तत्त्व की प्राप्ति सम्भव है।

[दीपक में पतंग जलता क्यों ?]

अर्थ—हे पतंगे ! तू दीपक के सौन्दर्य से आकर्षित होकर उसमें क्यो जलता है। जिस स्नेह-साधना से दीपक प्रदीप्त है तुझमें भी उसी प्रियतम के प्रेम का आलोक है। आलोक को आत्मसात् किए हुए भी तू उसे ढूंढता फिरता है मानो वह दूर हो। इस प्रकार अपने में ही प्रेमालोक को न खोजकर अज्ञानवश दीपक मे जलता है, यह तेरा पागलपन है—आत्मा परमात्मा मे अन्तर नही, केवल सत्स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है।

विशेष—'दूरी का अभिनय'—'अभिनय' इसलिए क्योकि उसमें वास्तविकता नही।

[उजियाला जिसका दीपक में]

अर्थ—दीपक जिस ज्वाला-साधना से प्रकाशित है तुझमें भी वही ज्वाला है। अतएव अपने स्वरूप की विस्मृति से तू भटकता फिरता है। अपनी ज्वाला में ही जल, दीपक के पास जाने की आवश्यकता नहीं है—यह परमात्मा जैसे किसी दूसरे के पास है वैसे ही तुम्हारे पास भी, अतएव कही और जाने की आवश्यकता नही।

[गिरता कब दीपक दीपक में]

अर्थ—एक ही आलोक को रखने वाले उपकरण—दीपक, तारे एक दूसरे की अपेक्षा नही रखते । तू इस तथ्य को नही समझता और तू स्वरूप की विस्मृति से— यह न समझते हुए कि तुझमे भी वही आलोक है—दूसरे की ज्वाला मे जल मिटने की नादानी करता है पर हाथ कुछ नहीं आता ।

[पाता जड़ जीवन, जीवन से]

अर्थ—जड़ और अन्धकार, चेतन और प्रकाश से सम्पृक्त होकर तद्रूप (चेतन और प्रकाश) हो जाते है, वही गुण ग्रहण कर लेते है । पर तुम दोनों (पतंग और दीपक) एक समान गुणों से, एक ही प्रकाश से, विभूषित हो, अतएव तुम्हे तद्रूपता मे क्या लाभ ?

[जो तू जलने को पागल हो]

शब्दार्थ—धूमहीन=बिना धुएँ के ।

अर्थ—हे पतंगे ! यदि तू दीपक के समान अपने भीतर की ज्वाला को पहचान साधना सलग्न हो जाय तो तेरा दुःख-जन्य अश्रु-जल भी स्नेह का रूप धारण कर तुझे आलोकित करने मे सहायक सिद्ध होगा । अतएव अपने ही स्नेह से धूमहीन और निष्कम्प जलो और बुझो, मूक अनन्य साधना मे रत रहो, व्यर्थ के हाहाकार की आवश्यकता नही ।

अवतरण—मैं अपनी करुणा के दान का प्रतिदान नही लूँगी क्यों कि व्यापार वहाँ होता है जहाँ दो हो, पर देश-काल तथा ब्रह्म से मेरी भिन्नता केवल नाम-रूपात्मक है। अतएव मैं अपनी करुणा की क्षति-पूर्ति (Compensation) नही चाहती। जीवन के लिए चरम सत्य केवल दो है। एक प्रियतम के प्रति विरह भावना, दूसरा संसार के प्रति करुणा।

[आँसू का मोल न लूँगी मैं]

अर्थ—हे प्रियतम ! मै अपनी करुणा की देन का प्रतिदान नही चाहती क्योंकि विश्व और मेरा दोनो का भेद केवल नाम रूपात्मक है वस्तुत: हम अद्वैत है जैसे समय अथवा क्षण मेरे निरतर चलनेवाले प्राणो के स्पदन से भिन्न नही है—मेरी एक-एक साँस ही तो काल का माप-मान वनी हुई है। मेरा मिट्टी से वना शरीर रजमय ससार से भिन्न नही। यह जगत भी मेरा दर्पण है मेरी सभी क्रियाओ का प्रति-विम्व ही तो यहाँ पड़ता है, संसार का कार्य व्यापार मेरे से भिन्न नही। हे प्रियतम ! तुम मेरे सर्वस्व हो—जव तक मेरा अस्तित्व है तव तक तुम हो, नही तो तुम्हे स्मरण कौन कर सकता है। इस प्रकार इस विश्व मे जो कुछ है, उन सव के साथ मेरा सहस्तित्व है, और उन सव मे तुम भी समाए हुए हो, अतएव मेरा किसी से व्यापार नही हो सकता।

[निर्जल हो जाने दो वादल]

शब्दार्थ—रीते = खाली।

अर्थ—यदि ये बादल भी बरस कर रीते होते है, यदि फूलो की पंखुडियाँ भी मधु-मकरन्द से विहीन होती है, विश्व मे करुणा नि·शेष होती है, और जनता का जीवन भी मधुर व्यथा—करुणा—से शून्य हो जाता है तो होने दो, कोई चिंता नही—क्योकि मै अपनी करुणा के अमर भण्डार से ससार के अभाव की पूर्ति करती रहूँगी।

[मिथ्या प्रिय मेरा अवगुंठन]

अर्थ—मेरा यह लज्जा का आवरण मिथ्या है—वे सभी भाव अथवा भौतिक बधन जो मिलन मे बाधक है असत्य है। मेरा भोला-पन—अज्ञान—ही मेरे लिए शाप है क्योकि यही प्रियतम से पार्थक्य का कारण है। प्रिय-स्मृति की कचोट और ससार के प्रति कारुण्य भावना, यही जीवन के एकमात्र सत्य है, इन्ही दो साधनो से अभिशाप-स्वरूप जीवन भी मेरे लिए वरदान, मधुर मुक्ति बन जाएगा।

विशेष—रश्मि की भूमिका मे महादेवी ने दु.ख के इन्ही दो स्वरूपों का वर्णन किया है—१. जो काल और सीमा के बंधन मे पडे हुए चेतन का असीम के प्रति क्रन्दन है, २. वह दुःख जो समस्त संसार को एक सूत्र मे बाँधता है अर्थात् करुणा। इसी करुणा के द्वारा ही विश्व-जीवन मे अपने जीवन को लीन रखना कवि का मोक्ष है। इस कविता मे भी इन्ही दो चरम सत्यों पर विश्वास प्रकट किया गया है।

अवतरण—जीव वस्तुतः परमात्मा ही है, असीम है किन्तु संसार-सीमा मे आवद्ध होने से वह ससीम ही है। ब्रह्म और जगत उसके दो छोर हैं। इन दोनो के हिंडोले मे वह झूलता है। शरीर दुःखरूप जगत का अंश है और आत्मा आनन्दस्वरूप चेतन का। अतएव जीव सुख-दुःख, आह्लाद-विषाद, विरक्ति-आसक्ति आदि विरोधी गुणों का प्रतीक है और इसलिए अपने आप मे पहेली भी—समस्या भी।

[प्रिय मं हूँ एक पहेली भी]

अर्थ—ससीम और असीम, विरोधी गुणो से संयुक्त होने के कारण प्रिय ! मै अपने आप में एक समस्या अथवा पहेली हूँ। जितना सुख-सौन्दर्य और हास-विलास वाला अमृत तुम्हारी चितवन में है और जितना दुःख-विषाद और पीड़ामय विष इस स्वार्थ-स्पंदित स्वार्थमय जगत में है—इन दोनों का पान करके एक ओर तो मुझे सदैव दुःखपान की प्यास बनी रहती है और दूसरी ओर से मै सुखरूपी सरिता की क्रीडाभूमि बन जाती हूँ।

विशेष—१. अन्तिम पक्ति मे रूपक है।

२. दोनों विरोधी गुणों के अस्तित्व से संघर्ष-भूमि बना प्राणी, एक पहेली ही तो है। फिर भी यहाँ विरोध नहीं, 'विरोधाभास' है।

[मेरे प्रतिरोमों से अविरत]

अर्थ—मेरे प्रत्येक रोम-रोम से निरन्तर सुख के निर्झर और दुखाग्नि के स्फुलिंग (चिगारियाँ) झरते हैं। आसक्ति और विरक्ति दोनों ही मेरे जीवन को प्यार करती है अर्थात् कभी मै संसार में

अनुरक्त होती हूँ और कभी ईश्वरोन्मुख होने से विरक्ति का अनुभव करती हूँ। हे प्रिय ! मैं जगत की जडता और ब्रह्म की चेतना दोनों की प्रतीक हूँ—मेरा ससीम शरीर जगत की जडता और विष का तथा आत्मा असीम चेतना और अमृत का प्रतिनिधित्व करते हैं।

विशेष—१. मनोविज्ञान के अनुवध सिद्धातानुसार विरोधी भावनाएँ भी किस प्रकार परस्पर शृंखलित रहती हैं, यह कविता उसका उदाहरण है।

२. विरोधाभास अलंकार का चमत्कार अवश्य है किंतु जीव की विचित्र स्थिति भी भली प्रकार से स्पष्ट हुई है।

अवतरण—इस कविता मे कवयित्री ने आत्मपरिचय (अपनी कहानी) के मिस भारतीय नारी की असहायावस्था की करुण-कोमल कहानी कही है—आप बीती ही जग बीती बन गई है ।

इस कविता का अर्थ दो प्रकार से हो सकता है ।

[क्या नई मेरी कहानी]

अर्थ—केवल मेरी ही कहानी किसी को आश्चर्य मे डालने वाली नही विश्व के अणु-परमाणु की यही कहानी है—मेरी दुखद कहानी की पुनरावृत्ति समग्र विश्व में हो रही है । (आगामी तीन कहानियो से नारी की दुखद स्थिति का ज्ञान हो जाएगा ।)

बादल के हृदय का रस अथवा स्नेह जब अपने अन्तर्दाह से पिघल कर बूंद—जो बादल के हृदय का सार थी, के रूप मे गिर पड़ा तो कीचड़ का प्यासा एवं फटा हुआ हृदय उसे पी गया । जैसे बिजली क्षण भर चमक कर विलीन हो जाती है उसी प्रकार मेघ की वह निशानी, बूंद, भी क्षण भर मे तृपित पृथ्वी के हृदय मे समा गई । इस बूंद के समान ही मेरी करुण कहानी है ।

विशेष—सजल बादल करुणाशील माता-पिता का प्रतीक है जिन्होंने अपने हृदय का टुकड़ा कन्या—दूसरे घर (पंकिल भूखंड) को सौप दिया । स्नेहविहीन पति ने उस अपरिचित का स्वागत किया । पर वह स्वयं कुछ प्रेम न दे सका, वह तो केवल वासना का प्यासा था । यही नारी की बिजली के समान करुण कहानी का कारण बना ।

[जन्म से मृदु कंज उर में]

शब्दार्थं (प्रतीकार्थ)—कंज-उर=माता-पिता। सर=कुटुम्ब। वायु=पति।

अर्थ—कोमल कमल के हृदय मे जन्म के क्षण से जिस गंध का बड़े प्यार से पोषण-सवर्धन हुआ वह चंचल गध वायु के चचल पखो पर बैठकर उड गया तब उस सौरभ का सरोवर से कुछ परिचय न रहा और वह कलिका, जिसके हृदय-रस से वह पुष्ट हुआ था, वह भी क्षण भर मे अपरिचित हो गई, आत्मीय न रह गई। यह गंध और कली की क्रूर कहानी वस्तुतः मेरी कहानी की पुनरावृत्ति मात्र है।

विशेष—जिस कन्या को माता-पिता के कमल-कोमल हृदय से प्यार मिला वह वय प्राप्त होने पर पति के साथ चली गई और कुटुम्ब और माता-पिता दोनो उसके लिए अपरिचित से हो गए और उस अस्थिर मनवाले पति (अनिल के चल पख) का क्या भरोसा ?

[चीर गिरि का कठिन-मानस]

अर्थ—पर्वत के कठोर-प्रस्तर हृदय को फोड कर जो स्नेह के समान मधुर निर्झर आविर्भूत हुआ उसे समुद्र ने अतिथि मानकर उसका अपने यहाँ स्वागत किया और इसका अमृत के समान मधुर निर्झर उस खारे सागर से मिलकर खारा पानी बन कर रह गया। यह निर्झर और सागर की कहानी मेरी करुण कहानी को सदैव दुहराती रहती है।

विशेष—माता-पिता के प्रेम का प्रतीक एकमात्र उसकी सतान होती है, यहाँ निर्झर, उसकी मलिन स्वार्थी पति (सागर) के हाथो जो दुर्गति हुई वह स्पष्ट है।

आध्यात्मिक पक्ष में अर्थ—

अवतरण—जीव परमात्मा का ही अंश है किन्तु उससे पृथकता की स्थिति मे उसे अपने सत्य-स्वरूप का विस्मरण हो जाता है। परिणामतः उसमें विकार आ जाते हैं।

अर्थ—विश्वम्भर 'मानव' के शब्दो मे आध्यात्मिक पक्ष में अर्थ का सार इस प्रकार है—"कमल मे जब तक गंध है तब तक तो वह उसकी है, पर जब वायु गंध को चुरा ले जाती है तब उस गध को न सर की सुधि रहती है और न सुमन की, इसी प्रकार ब्रह्मरूपी कंज से निसृत जीव रूपी गध को जब विश्व-समीर चुरा लाता है तब इस जीव को न अपने अमर लोक का ध्यान रहता है और न दिव्य उत्पत्ति का। बादल से टपकी बूँद यद्यपि बादल ही की है, पर जब यह पक में पतित होती है तब सभी यह कहने लगते हैं कि कीच की बूँद है, अतः इस उज्जवल जीव मे मलिन पृथ्वी के सम्पर्क से मलिनता का भी मिथ्या आरोप होता है। सरिता को ही देखिए, जब वह गिरि-उर को छोड़ती है और समुद्र के खारी जल से भेंट करती है तब उसका मधुर जल भी खारा हो जाता है। क्या आत्मा की मधुरता भी उस जगत के खारे जल में—दुःख से—खारी प्रतीत नही होती ?"

विशेष—१. समस्त कविता मे समासोक्ति अलंकार है।

२. आध्यात्मिक अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए यामा ९३ रश्मि पढिए। कुछ पक्तियाँ लीजिए—

मूक हो जाता वारिद-घोष,
जगा कर जब सारा संसार।
गूँजती, टकराती असहाय,
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार।
देश का जिसे न निज का भान,
बतावे क्या अपनी पहचान।

अवतरण—कवयित्री मानव जीवन को उद्‌बोधित करते हुए कहती है कि इस क्षण-भंगुर जीवन की सार्थकता त्यागजन्य परसेवा में है।

[मधुवेला है आज]

शब्दार्थ—मधुवेला=वसंत समय—फूल के लिए उपयुक्त समय, सुअवसर।

अर्थ—अरे जीवनरूपी फूल ! आज विकास और उन्नति की ओर अग्रसर होने का सुअवसर है। दुःखरूपी रजनी अश्रुरूपी ओसकणों की जयमाला देने आई है। प्रभात समय की सुख की मन्द वायु ताल दे-देकर (अर्थात्) मानो जागरण-गीत गाती हुई जगाने और उत्साह देने आई है। अतएव हे कोमल (कल्पनाओं से युक्त) जीवन रूपी फूल ! निर्भय होजा। तू कष्ट-कण्टकों से डर मत, ये तो मुझे प्रेरित तथा उत्साहित करने के लिए ही आए हैं (हाँ, परीक्षा चाहे ले)।

विशेष—१. रूपक अलंकार।

२. शूल कठिनाइयों का प्रतीक है।

३ दुःख की रजनी भी 'जयमाला' इस लिए देती प्रतीत होती है क्योंकि जिसने कभी दुखों का अनुभव नहीं किया वह वास्तविक सुख भी कैसे प्राप्त कर सकता है। उन्नति का मार्ग प्रायः कष्टों और दुखों के भीतर से होकर जाता है।

[भिक्षुक-सा यह विश्व खड़ा है]

अर्थ—एक दीन भिखारी के समान विश्व को करुणा और प्यार की अपेक्षा है। अतएव हे (पथभ्रष्ट) जीवनरूपी फूल, तू प्रफुल्लित

होकर अपनी पखुड़ियों के द्वार खोल हृदय को उदार बना और अपने सौरभ को लुटा दे। इसी में इसकी सार्थकता है। परसेवा के हेतु दान देने में ही महत्व है क्योंकि यही मधुवेला है, विकास वेला है, फिर कौन जाने कल यह वैभव समाप्त हो जाय और मुर्झा कर धूल में मिल जाना पड़े—मृत्यु अपनी शरण में ले-ले।

विशेष—१. महादेवी की कविता में जहाँ वेदना है वहाँ करुणा का अजस्र स्रोत भी। महादेवी इसी करुणा (संवेदना) से समाज की ओर जागरूक रहती है। उसकी उपेक्षा के कारण केवल स्व-केन्द्रित नहीं हो जाती—यह कविता इस तथ्य का सजग प्रमाण है।

२. 'भिक्षुक-सा' में उपमा अलंकार है।

३. जयशंकर प्रसाद भी 'लहर' की 'अशोक की चिंता' शीर्षक कविता में जीवन-फूल को सम्बोधित कर कहते हैं—

संसृति के विक्षत पग रे,
यह चलती है डगमग रे।
अनुलेप सदृश तू जग रे,
मृदु दल बिखेर इस मग रे।
कर चुके मधुर मधुपान भृंग.

अवतरण—सुख-दुःख के सामंजस्य में ही जीवन की पूर्णता है। केवल दुख मनुष्य को निस्पन्द बना देता है। अतएव सुख भी आवश्यक है। 'रश्मि' की भूमिका मे पहले दु.ख के प्रति अपने ममत्व को बताते हुए महादेवी ने यह भी लिखा था, "इससे मेरा यह अभिप्राय नही कि मै जीवन भर आँसू की माला ही गूँथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने मे बन्द पड़ा रहेगा।" दु.ख का उन्नयन भी करुणा मे सम्भव है, और करुणा सदैव सुखात्मक होती है—साधिका को इसी करुणा की अपेक्षा है।

[यह पतझर मधुवन भी हो]

शब्दार्थ—तुषार=हिम। वन श्री=वन की शोभा। दंशन=डक मारने की क्रिया।

अर्थ—कवयित्री यह कामना करती है कि जीवन वाटिका मे पतझर स्वरूप दुख के साथ वासतिक सुख भी हो। तभी जीवन की सार्थकता है। जीवन रूपी वाटिका मे जब दुख रूपी तुषार का एकान्त प्रभाव-विस्तार हो—सर्वत्र जड़ता-जर्जरता का प्राधान्य हो—तो वसन्त का आगमन भी हो। मानो वसन्त ऋतु मे विकसित वन की शोभा अपनी चितवन रूपी प्याले में मकरंद घोलकर सब पर छिडक दे, जिससे सब हरा-भरा हो जाए—सर्वत्र उल्लास छा जाए। जीवन-वाटिका में एक ओर कष्ट-कंटकों की चोट-कचोट हो तो दूसरी ओर सख्य-कलियों की सरसता-स्निग्धता भी।

विशेष—१. यहाँ 'पतझर' शूल आदि दुःख के तथा 'मधुवन' और 'कलियाँ' आदि सुख के प्रतीक हैं।

२. 'वेसुध' से दुःख का स्थायित्व व्यंजित होता है। जैसे कोई व्यक्ति सुध-बुध भूलकर सो रहे और उठने का नाम न ले, उसी प्रकार जीवन से दुःख जाने का नाम न ले।

[सूखे पल्लव फिरते हों]

शब्दार्थ—पल्लव=पत्ते। मारुत=वायु।

अर्थ—जब पतझड के सूखे पत्ते (मर्मर ध्वनि में) अपने ह्रास जर्जर जीवन की व्यथा-कथा कह रहे हो तब वसंत की प्रफुल्लित-विकसित करने वाली, जीवनदायिनी सुगंधित समीर तथा हरीतिमा प्रदान करनेवाली करुणा की बरसात भी हो। जीवन वाटिका मे दुःख-ह्रास रूपी पतझड ही न हो, जिसमें भ्रमर मानो मधु के अभाव में रोते रहे अपितु सुख विकास का वासंतिक वैभव भी हो जिसमे कोकिल की मधुर काकली सुनाई दे सके।

विशेष—१. इन चार पंक्तियो में उस निराश्रित निरुपाय दुखी मानव का चित्र है जो अपनी दुखद स्थिति का बखान करता भटक रहा हो और उसे कोई आसन देकर बैठाये और सहानुभूति दिखाए।

[जब सन्ध्या ने आंसू में]

अर्थ—जब संध्या नायिका अपने ओस अश्रुओ मे अंधकार रूपी सुरमे को घोलकर स्याही रूपी रात्रि का निर्माण करे—दुःख निराशा की रात का प्रसार हो—तब सुख का प्रकाश-प्रसार करती हुई अरुण वसना प्राची भी आए। दुःख की घोर रजनी के बाद सुख का प्रकाशमय दिन भी निकले।

विशेष—१. प्रथम दो पंक्तियो मे उस नायिका का आभास होता है जिसके विरह-जन्य अश्रुओ में उसका शृंगार घुल रहा हो और

तीसरी-चौथी पंक्ति में उस सौभाग्यवती ना   सने प्रियागमन पर रोली आदि लगा शृंगार कर लिया हो।

२. इस प्रकार चित्रों के संकेत देना महादेवी की अपनी विशेषता है।

३. पंत और प्रसाद भी कहते हैं—

(क) यह सांझ उषा का आँगन
आलिंगन विरह मिलन का

—गुञ्जन

(ख) दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात

—कामायनी

[जब पलकें गढ़ लेती हैं।]

शब्दार्थ—निदाघ=गरमी।

अर्थ—जब मेरी पलक रूपी सीपियाँ स्वाति नक्षत्र के जल के बिना ही—प्रियतम के न मिलने के कारण अश्रु मोतियों का निर्माण करें, तब हृदय की मधुर कामनाओं के कारण आई हुई मुस्कान सहानुभूति दिखाते हुए उन्हें पोंछ भी ले। दुःख रूपी ग्रीष्म की निर्ममता—निष्ठुरता में सुख शीतलता प्रदायक करुणा रूपी नवीन घन भी हो।

विशेष—इस कविता के आशय को महादेवी ने "दीपशिखा' में व्यक्त किया है—

"हास का मधु—दूत भेजो
रोष की भ्रभंगिमा पतझार को चाहे सहेजो।"

—दीपशिखा

अवतरण—साधिका की आनन्द साधना से वशीभूत हो उस दिव्य-स्वरूप का हृदय भी द्रवित हो उठा, उसने प्रकृति के उल्लासमय वातावरण द्वारा अपनी आगमन-वेला की सूचना दी है।

[मुस्काता संकेत भरा नभ]

अर्थ—हे सखी आकाश मे जो मादक वातावरण व्याप्त है उससे प्रिय आगमन की सूचना मिल रही है। देखो किसी के वियोग मे रोता हुआ-अश्रु कण के समान फुंहिया गिराता हुआ-बादल भी बिजली रूपी सुनहली बाहुओ मे आबद्ध हो हँस देता है। उसके आँसू हँसी मे परिणत हो रहे है। विराट् सागर भी अपने कोमल हृदय की वियोग ज्वाला—वडवाग्नि—को लहरों के तरल सरस संगीत से शात कर रहा है। दिन और रात उल्लासमग्न होकर एक दूसरे को मधु-भरे सोने और चाँदी के प्याले पिला रहे है। मानो इसी रूप में मदिरा गोष्ठी कर रहे हैं। यह उत्सव कदाचित् प्रियागमन की सूचना दे रहा है।

विशेष—१. दिन की विभूति है प्रकाश स्वरूप सोना और रात्रि की ज्योत्स्ना स्वरूप चाँदी। यह कनक और रजत अर्थ को ऐसा अलंकृत कर रहे है जो सहृदय-संवेद्य है।

२. 'स्वर्ण पाश' में पदगत, 'रोता' मे विशेषणगत, 'हँस देना' में क्रियागत और 'सागर ज्वाला गीतो से नहलाता' में वाक्यगत लक्षणा का सौन्दर्य है।

शब्दार्थ—हिम कण=ओस बिन्दु। सुरधनु=इन्द्रधनुष।

अर्थ—इस उत्सव मे तारक-परियाँ नृत्य कर रही है और

नृत्य-बेसुध इन परियो की मंजीरों से (ओस के रूप में) मोती बिखर रहे हैं। मलयानिल सौरभ भरकर ओस-सिक्त मार्ग से संचरण कर रहा है मानो वह अंजलि भर का पराग विकीर्ण कर रहा है। जिस प्रकार दिग्भ्रात पथिक घूम फिरकर उसी रास्ते पर लौट आता है उसी प्रकार जीवन के क्षण इस मादक वेला मे विमुग्ध तथा अभिभूत होकर लौट रहे हैं—ऐसा प्रतीत होता है मानो समय की प्रगति रुक गई है, समय बीत ही नही रहा।

विशेष—प्रसाद की कामायनी का रात्रि का निम्न मादक चित्र भी मनोरम है—

पगली हाँ सम्हाल ले कैसे
छूट पडा तेरा अंचल
देख बिखरती है मणिराजी
अरी उठा बेसुध चचल।

[सघन वेदना के तम में]

शब्दार्थ—अधर=ओष्ठ, आकाश।

अर्थ—जैसे अंधकार मे बिजली की दमक सोने के कण से बिखरा देती है, इसी प्रकार मेरे विषादावृत मानस मे प्रियतम की सुधि, बिजली के समान कौंधकर, कुछ क्षण के लिए सुख का स्वर्णिम आलोक भर देती है, इन अश्रु अथवा जलकण से सिक्त ओष्ठ रूपी आकाश पर मेरी निश्वासे स्मित रूपी नवीन इन्द्रधनुष की रचना कर देती है—रुदन का स्थान हास्य ले लेता है। जैसे प्रहरी—कोष की रक्षा करते हैं और कोष से धन बाहर नही जाने देते उसी प्रकार आँसुओ का कोष, मेरी पुतलियों पर नव जागृत नवीन मधुर स्वप्न पहरा सा दे रहे हैं और आँसुओ को नही निकलने दे रहे—निराशा के स्थान पर सुखद आशाओ के कारण आँसू निकलने बंद हो गए हैं, इस प्रकार आज प्रियागमन सूचक संकेत मिल रहे हैं।

विशेष—'अधरों' मे श्लेष मूलक रूपक है। 'भीगे' शब्द भी सार्थक है क्योकि एक ओर निरंतर वियोगाश्रुओं का संकेत मिलता है दूसरी ओर गीले वातावरण का। इन्द्रधनुष जलकण युक्त वायुमण्डल मे ही हो सकता है।

महादेवी भाषा की रूप-व्यापार योजना मे सिद्ध है। 'सोने के कण' और 'सुरधनु' जहाँ चित्रात्मकता मे साहायक है वहाँ असीम वैभव की व्यंजना भी कर रहे है।

[नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय]

अर्थ—प्रियागमन के शुभ शकुन देखकर समस्त इन्द्रियाँ प्रियतम की ओर ही केन्द्रित हो रही है—नेत्रों मे देखने के अतिरिक्त सुनने की शक्ति भी आ गई है, तनिक-सी आहट पाकर नेत्र उसी ओर देखने लग जाते है। श्रवणों मे सुनने की शक्ति के अतिरिक्त देखने की शक्ति भी आ गई है, तनिक ध्वनि सुनकर उस ओर ऐसे उन्मुख होते है मानो किसी को देख लेना चाहते हों। सभी इन्द्रयों मे पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो गया है। आज केवल मेरा हृदय आशामयी भावनाओ से आन्दोलित नही हो रहा अपितु मेरा प्रत्येक रोम हृदय-मय हो रहा है—रोम-रोम से हर्ष की अभिव्यक्ति हो रही है। मैं रोमाचित हो उठी हूँ। इसीलिए मेरे प्राणो के छाले पुलको मे भर कर फूल बन गए है—आज प्राणो की पीड़ा अनायास ही उल्लास में परिवर्तित-परिणत हो गई है।

विशेष—१. सुमित्रानन्दन पन्त ने 'स्नेह' शीर्षक कविता मे वृत्तियो की एकाग्रावस्था में इन्द्रियो की एकोन्मुख दशा का अद्भुत परिचय दिया है—

गिरा हो जाती है सनयन
नयन करते नीरव भाषण
श्रवण तक आ जाता है मन
स्वयं मन करता बात श्रवण

२. छायावाद मे प्रकृति का चित्रण प्रायः कवि की मनोदशा के अनुकूल हुआ है। महादेवी जी ने लिखा भी है—

फैलते है सांध्य नभ में भाव ही मेरे रंगीले

तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले

इस कविता मे भी कवयित्री को प्रकृतिमे अपनी आशामयी भावनाओं की झलक ही दिखाई देती है। वैसे भी आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार समस्त जगत उस अलौकिक ब्रह्म की छाया है अतएव जगत उस निर्माता की ओर इंगित करता है।

अवतरण—वास्तविक आनन्द स्वर्ग अथवा मोक्ष मे न होकर प्रियतम के वियोग मे ही है। साधक और साध्य की स्थिति में विषमता है। एक असीम है दूसरा ससीम। एक सतत सुखमय है दूसरा निरन्तर दुखमय। फिर भी साधिका को अपनी सीमित दुःखमयी स्थिति की ही स्पृहा है, क्योंकि चिरन्तन दुख का इष्ट के साथ सम्बन्ध है।

[झरते नित लोचन मेरे हो]

अर्थ—कवयित्री कामना करती है कि मेरे मेघस्वरूप नयन सदैव बरसते रहें। युगयुगान्तर से मोती-सी उज्ज्वल आभा विकीर्ण करने वाली चिर वैभवपूर्ण तारो की पंक्ति उस प्रियतम की हो और क्षणिक आभा तथा सौन्दर्य दिखाकर विलीन हो जाने वाली बिजली के कंकण ही मेरा शृंगार करे।

विशेष—कवयित्री को अपने बनते और मिटते, नश्वर लघु वैभव मे ही सन्तोष है।

[ले ले तरल रजत औ' कंचन]

अर्थ—रात-दिन अपनी चन्द्रिका-चाँदी और प्रकाश-स्वर्ण से जो नभ के आँगन को लीपकर सुशोभित कर रहे हो, वह चिर ऐश्वर्यपूर्ण नभ प्रियतम का और नित्य घिर-घिरकर झरने वाले और इसीलिए नवीन परन्तु नश्वर घन मेरे हो।

विशेष—नीरजा की ही एक अन्य कविता में कवयित्री ने यही कामना की है—

"घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय"

[पद्मराग-कलियों से विकसित]

शब्दार्थ—पद्मराग=एक प्रसिद्ध रत्न। नीलम=नीले रंग का रत्न।

अर्थ—पद्मराग की कलियो से विकसित तथा नीलम के भ्रमरो से गुञ्जरित, सुगन्धित तथा चिर वासतिक वैभव से युक्त आनन्ददायक स्वर्ग वाटिका उनकी हो और क्षणिक किन्तु सुन्दर ओस बिन्दुओ के भार से झुके हुए तृण आदि मेरे हो।

विशेष—१. यहाँ नन्दन की तुलना तृण (तिनके) से की गई है, इससे प्रियतम का वैभव और भी बढ जाता है।

२. पद्मराग और नीलम शब्दो का प्रयोग भी इन्द्र वाटिका के अतुल वैभव को दिखाने के लिए हुआ है।

[तम-सा नीरव नभ- सा विस्तृत]

अर्थ—अन्धकार-सा शान्त और आकाश के सदृश विशाल, हास-रुदन (सुख दुःख) से रहित निस्पन्द सूनापन उनका हो और सुख-दुःख से स्पदित जीवन मेरा हो।

विशेष—'तम सा नीरव' और 'नभ सा विस्तृत' मे अमूर्त विधान है।

[जिसमे कसक न सुधि का दंशन]

अर्थ—मधुर पीडा और सुखद स्मृतियो की कचोट ही प्रिय मिलन के साधन है और ये रसमयी मुक्ति और निर्वाण में सम्भव नही—अतएव ऐसी मुक्ति प्रियतम के पास ही रहे और जीवन के सैकडों बन्धन मेरे हो।

विशेष—महादेवी ने मुक्ति की आकांक्षा की है परन्तु सासारिक

बन्धनो के रहते हुए ही। क्योकि बन्धन ही तो प्रिय मिलन का साधन है। पन्त ने भी इसी प्रकार कहा है—

तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन

अतः उनको साध्य से भी साधन अधिक प्रिय है।

यथा—

पीड़ा में ढूँढा तुमको,
तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।

[बुद बुद में आवर्त्त अपरिमित]

अर्थ—एक एक बुलबुले मे अनेको भँवर उठते-गिरते है। कण मे, अणु परमाणुओ के संघर्ष से परिवर्तन-प्रक्रिया गतिशील रहती है और इनसे ही जो सदैव सृष्टि और प्रलय होती है वह सब प्रियतम को मुबारक हो, हाँ; इस सृष्टि प्रलयमय क्रम में सहयोग देने वाले नश्वर उपकरण मेरे ही हो।

[सस्मित पुलकित नित]

शब्दार्थ—परिमलमय=सौरभमय। अग=जड़।

अर्थ—सुख सौरभ-मय तथा शतश. रंगीन कामनाओ से युक्त जड़-चेतनामय संसार का अणुपरमाणु उनका हो—इसकी मुझे आकांक्षा नही। मुझे तो पलभर के लिये केवल उस निष्ठुर प्रियतम की अपेक्षा है।

विशेष—'झरते नित लोचन हो' इस पंक्तिका अर्थ है कि कवयित्री को विरह काम्य है क्योकि इसी से प्रियतम का निरन्तर आभास होता रहता है और कवयित्री की पृथक् स्थिति भी बनी रहती है।

अवतरण—प्रेम की अतिशयता में वियोगिनी नायिका की अनुभूति कोमलतम हो प्रकृति से अपना एकात्म्य स्थापित करती है और मेघो से अपने प्रियतम का सन्देश पाती है।

[लाए कौन संदेश ... ... पुलकों के सावन ।]

शब्दार्थ—निस्पन्द=भावशून्य।

अर्थ—वर्षा के ये नये मेघ ऐसा कौन सा सन्देश ले आए है कि जिनको देखकर समस्त प्रकृति का रूप ही जैसे बदल गया हो। ऐसे उल्लासमय, प्रेरणाप्रद, जीवनदायक संदेश को लेकर आए है। देखो न. जो आकाश गर्वित था—गर्व के कारण पृथ्वी से सम्पर्क स्थापित नही करता था तथा अपने भाल (मस्तक) को ऊंचा किएथा—वह भी—मेघो के द्वारा पृथ्वी पर, मानो उससे सम्पृक्त होने के लिए—झुक आया है। आकाश रूपी नायक के भावशून्य-निष्ठुर हृदय मे शत-शत स्पन्दन रूपी मेघ उमड़ उठे है। आकाश का रूप परिवर्तित हो गया और वह मेघों के रूप मे सैकड़ो भावो से स्पन्दित, आन्दोलित होकर पृथ्वी नायिका की ओर झुक आया है।

विशेष—पुलको के सावन उमड़ने का अर्थ है शत-शत मेघो का उमड़ना। यहाँ पर अश मेघ का प्रयोग न होकर अशी (सावन) का प्रयोग हुआ है। इससे सौदर्य और प्रभाव बढ गया है। यह अंग्रेजी का (Metonymy) अलकार है। भारतीय काव्य-शास्त्र के अनुसार इसमे लक्षणा है। पुलको के सावन मे व्यस्त रूपक है। वैसे आकाश का मानवीकरण किया गया है—ऐसा प्रतीत होता है मानो

कोई गर्वीला नायक अपनी प्रिया को रिझाने की लिए गर्व छोडकर उसे मना रहा है ।

[चौकी निद्रित ... ... कंकण ।]

अर्थ—निद्रा मे अलसाती हुई रजनी-नायिका, इन वादलों के सदेश के कारण, मधुर स्वप्न से रोमाचित-कटकित हो चौक उठी और सात्त्विक कम्प के कारण करो के बिजली (जो कि मेघो मे कौध रही है) रूपी ककण भी हिल उठे ।

विशेष—काली रजनी मे विजली की कौध अकस्मात रात्रि की निद्रा मे चौक उठने से कितना साम्य रखती है ! विजली की चमक को स्वर्ण-ककण का रूप देना कितना चित्रात्मक तथा ध्वन्यात्मक है ।

[दिशि का चचल ... ... हीरक के कण ।]

अर्थ—रात्रि की दिशा सुन्दरी की देह पर पड़ा हुआ परिमल-दुकूल अनायास ही चचल हो उठा क्योकि किसी आतरिक प्रेरणावश शरीर रोमांचित हो गया, मानो वह चौक उठी हो और झटका लगनेसे (वातावरण मे घूमते हुए) जुगनू रूपी हीरो का हार टूटकर विखर गया हो ।

विशेष—परिमल दुकूल यही है कि सारी दिशाओ मे एक सौरभ का वितान तन गया ।

जुगनू की ज्योति कितनी क्षणिक होती है किंतु छिन्नहार के लघु हीरक-कणो का उपमान उनकी ज्योति-सुषमा का वर्धन कर स्थायित्व प्रदान कर देता है । छिन्न हार के हीरक कण जैसे विखर जाते है वैसे ही जुगनू भी दिशा के अंचल मे जगमगाने लगे । यहाँ उपमान अत्यन्त भाव- वर्धक सिद्ध हुआ है ।

[जड़ जग ... ... अंकुर बन बन ।]

अर्थ—ये घन प्रियतम का ऐसा मधुर सदेश लाए कि विरह-जर्जर जडवत् प्रकृति-नायिका का हृदय सहसा स्पन्दित हो उठा, उसमें

चेतना आ गई और उसके स्थिर पदार्थ रूपी अंग रोमाच के कारण काँप उठे। पृथ्वी नायिका की शत-शत मधुर आकांक्षाए, जो उसके अवचेतन मन मे प्रसुप्त अवस्था मे सचित थी, (अर्थात् जो वीज पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुए थे) कोमलतम अंकुरो के रूप मे फूट पडी।

विशेष–मनोविज्ञान (psychology) के अनुसार हमारे अवचेतन में सुप्त इच्छाएँ किसी वाह्य उत्तेजना से सहसा जाग उठती हैं। यहाँ मेघों ने ऐसे ही वातावरण का सृजन किया है। इस चित्र की सूक्ष्मता तथा गहराई प्रशंसनीय है।

[रोया चातक ··· ··· ···दुहराया नर्तन।]

अर्थ—मेघों से संकेत पाकर चातक किसी पूर्व स्मृति के दर्शन से रो उठा और कोकिल का कण्ठ भी मानो सात्विक के कारण रुँध गया। वर्षा की झड़ियों की ध्वनि से उन्ही से ताल मिलाती हुई मानो मयूरी भी उन्मत्त होकर नाच उठी।

विशेष—कवि समय अथवा परम्परा के अनुसार—जो प्रकृतया असत्य होने पर भी प्रसिद्ध है—कोकिल वर्षा ऋतु मे नही गाती।

[सुख दुःख ··· ···विस्मित लोचन।]

अर्थ—वादलो के गम्भीर घोष से, संदेश से समस्त प्रकृति ही प्रभावित नही हुई मेरा उर भी नाना प्रकार की सुख-दु:खमयी स्मृतियो से आंदोलित हो उठा और मोती के समान तरल-शुभ्र अश्रुओं से विस्मित लोचन भर गए।

विशेष—लोचन विस्मित इसलिए कहे गए है क्योंकि यह सव कुछ किसी अज्ञात कारण से, अनायास हो रहा है।

अवतरण—इस कविता मे ससार की, आध्यात्मिक साधना में लीन साधक के प्रति उक्ति है। ससार मानो चेतावनी दे रहा है कि दुःख के प्रति यह अनुराग असंगत तथा अनुचित है।

[कहता जग दुख को प्यार न कर।]

शब्दार्थ—अनवीधे मोती = आँसू।

अर्थ—दुःख से ममता रखने वाले प्राणी को—मानो कवयित्री को ही—ससार कहता है कि तू दुःख से प्यार मत कर। दृग रूपी सीपी के ये अश्रु-मोती विशेष प्रकार के है। सामान्य मोती विध सकते है पर ये नही। और जब विध ही नही सकते तो उन्हे गूँथा भी नही जा सकता। ये तो बुदबुद के समान क्षणिक अस्तित्व वाले निरन्तर बनते-मिटते रहते है अतएव इनसे किसी प्रकार का हार गूँथना व्यर्थ सिद्ध होगा। भाव यह कि तुम्हारी यह कल्पना व्यर्थ है कि तुम दुख के द्वारा कोई सुन्दर अथवा मधुर उपलब्धि कर सकोगे।

[किसने निज को खोकर पाया।]

अर्थ—अपने अस्तित्व को मिटाकर कुछ पाने मे कोई लाभ नही। [कोई भी उस छाया—अज्ञात इष्ट—को सिद्ध नही कर सका, क्योंकि वह मात्र छाया है, एक छलना अथवा धोखा है—वास्तविक नही। इस प्रकार साधक भी भ्रम है (क्योंकि उसे स्वय को भी मिटाना पडता है) और प्रियतम (इष्ट) भी भ्रम (अन्धकार) है। ऐसे शून्य में किसी को पाने का प्रयास अथवा साधना भी निष्फल है, व्यर्थ है।

[यह मधुर कसक तेरे उर की ।]

शब्दार्थ—स्मित=हँसी ।

अर्थ—संसार साधक को कहता है कि यह तेरे हृदय की इस मधुर कसक-ब्रह्म को पाने की आह्लादकारी आध्यात्मिक पीडा—का कोई मूल्य नही है । क्योकि जैसा कि ऊपर कहा गया है जब इष्ट ही भ्रम है तो यह भी निष्प्रयोजन है, इसलिए मेरी हँसी—भौतिक सुख वैभव—से इस को वदल ले जो वास्तविक है, छलना नही है। व्यर्थ का व्यापार करने से कोई लाभ नही ।

विशेष—"चल व्यापार न कर"—साधक कम मूल्य वाले भोगो का तिरस्कार करके उच्च मूल्य वाले स्थायी आध्यात्मिक आनन्द को पाने का प्रयत्न करता है, मानो एक प्रकार का व्यापार करता है ।

[दर्पणमय है अण्-अणु मेरा ।]

अर्थ—ससार एक दर्पण के समान है जिसमे मानव आत्मा प्रतिविम्वित होती है । जो सम्वन्ध दर्पण और विम्व का है वही संसार और मानवात्मा का है । अर्थात् एक के विना दूसरे की स्थिति नही, दोनो का अन्योन्याश्रय सम्वन्ध है । संसार मे जो दृश्य व्यापार है वे मानवात्मा के प्रतिविम्व मात्र है । अतएव अपनी ही प्रतिच्छाया से अनुनय-मनुहार करना, यह अज्ञान है ।

[सुख मधु में क्या दुख का मिश्रण ।]

अर्थ—सुखामृत मे दुःख के विप का मेल और दुख के कडवे विष में सुख के मिश्री कणो का मेल हानिप्रद एवं व्यर्थ है । सुख, सुख ही है और दुख, दुःख ही—दोनो का कोई सम्वन्ध नही । तुझे कलियों के देश जाना है । तेरे जीवन का इष्ट आनन्द है जो दुख से विल्कुल विपरीत है, तव कष्ट-कण्टको को अपनाना निष्प्रयोजन है । 'जैसा देश वैसा वेष' किन्तु तुम इसके विपरीत चल रहे हो ।

विशेष—इस समस्त कविता का सार यह है कि सासारिक-मायाजाल अनेक प्रकार से साधक को साधनापथ से विमुख करते है । ..

अवतरण—संयोगिनी नायिका की उषा के प्रति उक्ति है। ब्रह्म के साथ रात्रि की निद्रावस्था में अनुभूति की तन्मय दशा ही मिलना सम्भव है, व्यावहारिक ज्ञान-जन्य अहं की जागृति (जागृतावस्था) में नहीं।

[मत अरुण घूँघट ··· ··· ··· अनमोल री।]

अर्थ—हे उषे! (यहाँ पर उषा की कल्पना अवगुण्ठनवती सुन्दरी के रूप मे की गई है।) तू अपने लाल अवगुठण्न को मत हटा। ये तारा रूपी फूल जो मूल विना ही इस आकाश रूपी वेल पर खिले हुए है, और जिन्होने ओस के रूप में आँसू वहाए है किन्तु (आकाश कुसम होने के कारण) विचित्रता यही है कि फिर भी हँसते से जान पड़ते है—इनको तू (उषा-सुन्दरी) मत वटोर, ये अनमोल है। अर्थात् उषा अभी वनी रहे जिससे प्रातःकाल न हो और संयोगिनी नायिका का संयोग समय बीतने न पाये।

विशेष—यहाँ तारो पर सुमन का आरोप है और इसीलिए 'वृन्तविन' का प्रयोग है। अत. रूपक और विभावना अलंकार है किन्तु चमत्कार रूपक में है। 'अश्रु वरसाते हँसे' में विरोधाभास है।

[तरल सोने से ··· ··· ··· बोल री]

शब्दार्थ—अलके = वाल।

अर्थ—सोने के पानी से (सुनहरी किरणो से कलित) धुले तथा पद्मरागों (तारो) से सुसज्जित तेरे वाल (जिनको सँवारने मे इतना

प्रयत्न किया गया है) उलझ जायेंगे यदि तू घूँघट हटाकर प्रात कालीन वायुपूर्ण वातावरण में विचरण करने लगेगी।

[निशि गई ... ... मोल री।]

अर्थ—रात्रि-सुन्दरी ओस के रूप मे फूलों के हाट मे मोती सज कर गई है ये अत्यन्त सुकुमार है और यदि तूने इनसे मोल-तोल किया तो ये लज्जा के कारण ही गल जायेगे—तेरे आगमन से, किरणो के स्पर्श से ही समाप्त हो जायेंगे।

[स्वर्ण कुमकुम ... ... लोल री]

अर्थ—तुम्हारी यह मेघ रूपी चूनरी सुनहरी और केसरी रंग मे बड़े प्रयास से रंगी गई है। अब तू प्रकाश-सागर की चचल लहरों मे मत चल अन्यथा इसके रग उतर जायेंगे।

[चाँदनी की सित ... ... घोल री]

शब्दार्थ—सित=श्वेत। सुधाकर=चन्द्रमा।

अर्थ—चन्द्रमा स्वच्छ चाँदनी रूपी अमृत को कली की प्यालियों मे भर भरकर रात्रि भर ससार को वितरित करता रहा है। अब हे उषे तू अपनी किरणो से लाल शराब इन प्यालियो मे मत घोल।

विशेष—१. अमृत का रग श्वेत माना गया है और शराब का लाल, इसलिए चाँदनी की अमृत से तथा उषा की लालिमा की शराब से उपमा दी गई है। रसलीन का यह दोहा प्रसिद्ध है—

अमी हलाहल मदभरे, स्वेत स्याम रतनार।

२. सुधाकर शब्द साभिप्राय है, 'चन्द्रमा' से यह काम न चलता। सुधाकर ही सुधा (अमृत) बाँट सकता है। एक कवि से यह अपेक्षित है कि समानार्थक शब्दो मे भी उस शब्द का चुनाव करे जिससे रूप, गुण अथवा क्रिया का बोध हो। महादेवी ने यही किया है।

[पलक सीपें ··· ··· ··· तोल री।]

अर्थ—पलक रूपी सीपियाँ तथा नीद रूपी जल मिलकर स्वप्न रूपी मोतियो का सृजन कर रहे है—निद्रामग्न ससार अनेक मधुर स्वप्न देख रहा है। उषे ! तू इन्हे अपनी मुस्कराहट से खरीदने का प्रयास मत कर क्योकि ये विकने के लिए नही है—तेरी प्रकाशमयी किरणो से इनका कोई सम्वन्ध नही।

[खेल नुख दुरा ··· ··· ··· बोल री].

अर्थ—यह ससार रूपी चचल शिशु सुख दु.ख के खेल खेलता हुआ अचानक सो गया है अतएव हे उषे ! तू पक्षियो के कलरव-रूप मे कोलाहल न करना, नही तो यह शिशु कच्ची नीद से जागकर मचलने लगेगा।

विशेष—इस कविता की तुलना 'सांध्यगीत' की कविता 'ओ अरुण वसना' से कीजिए। इससे इस कविता का आध्यात्मिक अर्थ भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है। यथा—

ओ अरुण वसना !
··· ··· ···
है युगों की साधना से
प्राण का क्रन्दन सुलाया;
आज लघु जीवन किसी
निःसीम प्रियतम में समाया !
राग छलकाती हुई तू आज इस पथ में न हँसना !

अवतरण—मानव चेतना के सस्पर्श से ही प्रकृति और पुरुष (निर्गुण ब्रह्म) की महत्ता-महिमा है ।

[जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर]

शब्दार्थ— रसाल=आम ।

अर्थ— यह मंसार करुण है और मैं मधुर हूँ । दोनो—करुण और मधुर-के सुसंयोग ही से ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है कि सृष्टि का प्रत्येक रजकण भी करुण और मधुर हो जाता है और इसी से सुन्दर भी ।

यह संसार पतझड के आम्रवृक्ष के समान है जिसके पत्ते झड गए हैं और जो निशब्द है (क्योकि कोकिल की काकली पतझड़ मे नही सुनाई देती) । किन्तु जैसे कोयल की मधुर ध्वनि के श्रवण से—मानो वसंतागमन की सूचना पाकर— पतझड़ के ह्रास जर्जर रसाल पर प्रतिक्षण सुन्दर मंजरिया फूट उठती है उसी प्रकार यह संसार रूपी आम्रवृक्ष भी मानव-चेतना के सस्पर्श से अनेक प्रकार की असख्य सुख दु.खात्मक मंजरियो मे प्रस्फुटित हो उठता है ।

विशेष--जग अपने आप मे नीरव और जड़ है । मानव चेतना के कारण ही उसमे असख्य सुख-दु खमय भाव उत्पन्न हुए । मानव हृदय ही समस्त प्रकृति को सौन्दर्य प्रदान करनेवाला है ।

[विस्मृति-शशि के हिमकिरण-बाण]

शब्दार्थ— हिमकिरण बाण=शीतल किरणे । रश्मियान=सूर्य ।

अर्थ—वसंतागमन से पूर्व, शिशिर मे जिस प्रकार चन्द्रमा

की हिमवत शीतल किरणे, सरोवर के जल को जमा देती है—उसे निस्तरंग अथवा निर्जीव वना देती है उसी प्रकार विस्मृति (अज्ञान) के कारण यह जग-जीवन (भौतिक जीवन या प्रकृति) भी स्पदनहीन था। पुनः जिस प्रकार वसंतकालीन सूर्य (जिसका तेज धीरे-धीरे वढ रहा होता है) के आतप और मलयवायु से सरोवर का जल पिघलने लगता है, उस मे चेतना आ जाती है उसी प्रकार मेरे आगमन से प्रकृति की अज्ञानमयी जडता मे भी सुख-सौन्दर्य की चहल-पहल उत्पन्न हो गई।

[यह नियति-तिमिर-सागर अपार]

शब्दार्थ—नियति=प्रकृति की नियामिका शक्ति—वह शक्ति जिससे प्रकृति की समस्त क्रियाएँ नियमपूर्वक चलती है ।

अर्थ—यह नियति द्वारा संचालित प्राकृतिक ससार अंधकार के महासमुद्र के समान था जिसमे असंख्य ज्योतिपिंड अपने आप बुझते रहते थे। किन्तु सूर्य की किरण सम मानव चेतना के संस्पर्श से यह अनेक रूप-रंगो में प्रकाशित हो उठा।

[युग से थी प्रिय की मूक वीन]

अर्थ—केवल इस प्रकृति मे ही नही, इस परम पुरुप की अनादि काल से सुप्त मौन वीन के ढीले तारो मे भी फिर से झंकार जागृत कर दी जिससे समस्त शून्यमय वातावरण अनेक सुख-दु.खरूपी झकारे से गुंजरित हो उठा।

विशेष—नियति-शासित प्रकृति तो जड थी ही, वह परमपुरुप भी निर्विकार था। ब्रह्म अपने तत्त्वरूप मे निर्गुण है। मानव चेतना ने ही निर्गुण ब्रह्म में भी चेतना का आरोप किया।

अवतरण—इस क्षणिक जीवन मे प्रिय के नाम की रटना ही चरम सत्य है ।

[प्राणपिक प्रिय-नाम रे कह !]

अर्थ—हे मेरे प्राणरूपी पिक ! तू उसी प्रियतम के नाम की रटना कर (जिसका विरह भी इतना मधुर है) । मैंने अपने लघु-ससीम व्यक्तित्व को उस प्रिय के विराट्-असीम व्यक्तित्व मे विलीन कर दिया है पर मेरे आत्मसमर्पण से वह भी निरपेक्ष नही रह सका और मेरे छोटे-से हृदय मे बँध गया है । इस प्रकार अब विरह-जन्य दुख की रजनी चिर मिलन-जन्य सुख के प्रभात मे परिणत हो गई है ।

[दुख अतिथि का धो चरण तल]

शब्दार्थ—रसमय=सरस ।

अर्थ—मेरे नयनों से जो निरन्तर अश्रु प्रवाहित हो रहे है वे सांसारिक क्रन्दन (पीडा), अभाव, अथवा कुण्ठा का परिणाम नही । ये अश्रु नितान्त सार्थक है क्योकि दुख रूपी अतिथि का पद-प्रक्षालन इन्ही से होता है । और जिस प्रकार वर्षा ऋतु के बादल, संसार को तापित-शापित देख और इसी से करुणा मे भरकर बरस पड़ते है और विश्व को सरस अथवा हरा-भरा कर देते है, उसी प्रकार इन आँसुओ से भी विश्व सरस हो रहा है—सवेदनशीलता अथवा करुणा विश्व के लिए मंगल सिद्ध हो रही है ।

विशेष—'दुख अतिथि······तल' मे दुःख को महत्त्व दिया गया है मानो आतिथेय शत-शत भावो से गद्‌गद् होकर महान अतिथि के

चरण धोता है। ससार मे दुःख का मूल्य है क्योंकि इसी से सहानुभूति और समता की भावनाएँ परिपुष्ट होती है—विश्व के साथ रागात्मक सम्बध स्थापित होता है। मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा है—

मुझे दुःख से है ममता,
बढ़ती है जिससे सहानुभूति समता।

महादेवी पर बौद्ध-दर्शन का प्रभाव है जिसमे दुःख के इसी स्वरूप, करुणा, को विशेष महत्त्व दिया गया है।

[ले गया जिसको लुभा दिन।]

अर्थ—सन्ध्या के समय, दिन जाते-जाते मेरी निद्रा को भी साथ ले गया। प्रियतम के विरह मे पूरी नीद न आने से, नाना प्रकार के सुखद स्वप्नो का आना-जाना रहता है। मानो प्रियतम के विरह या प्रेम के कारण यह नीद भी जागृतिमय बन गई है। इसमे वास्तविक जागृति से भी अधिक उथल-पुथल है।

विशेष—१. प्रियतम का विरह मधुर है और इसीलिए विरह-जन्य अश्रु तथा स्वप्न भी मधुर है—निद्रा का अभाव कदापि खटकता नही।

२. तद्रा मे ही स्वप्न आया करते है, गहरी निद्रा मे नही।

[एक प्रिय-दृग-श्यामता-सा।]

अर्थ—दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आता है—यह संसार का अटल-अटूट नियम है। किन्तु मैं इसे केवल एक नियम अथवा समय का गतिक्रम ही नही मानती, उस प्रियतम का सुन्दर सुखद उपहार मानती हूँ। यह श्यामल रात्रि प्रिय के नयनो की श्यामलता अथवा नीलिमा है और दिन मानो उसकी मुस्कान का प्रकाश है। तात्पर्य यह कि किसी समय को रात कहकर उसकी उपेक्षा न करनी

चाहिए और न दिन कह कर ही। क्योंकि इन दोनों में भी तो प्रिय का ही आभास है। यही अवस्था दुःख-सुख की है।

विशेष—अलंकारों का सहज चमत्कार प्रशंसनीय है। 'सा' उपमा का बोधक है—अमूर्त का अमूर्त विधान है। क्रम अलंकार भी है। जब दिन-रात को प्रिय का उपहार कहते हैं तो अपह्नुति भी झलक उठती है।

[श्वास से स्पंदन रहे झर।]

शब्दार्थ—स्पंदन=धड़कन।

अर्थ—मेरे प्राणों की धड़कन श्वासों द्वारा झर रही है—धीरे-धीरे शून्य में विलीन होती जा रही है तथा मेरे प्राणों का रस (अश्रु) आँखों से निरन्तर वह रहा है। अतएव प्रियतम के विरह से जीवन का यह क्षय अभिशाप नही, वरदान स्वरूप है। कारण मैं इसीसे निर्वाण की ओर बढ रही हूँ, यह बाह्य दृष्टिगोचर विनाश वस्तुतः निर्वाण का सोपान है।

[चल क्षणों का क्षणिक संचय।]

शब्दार्थ- चल=चंचल, अस्थाई। वालुका=रेत।

अर्थ—अस्थाई क्षणों के संचय का नाम ही जीवन है। यह जीवन इतना ही क्षणिक है जितना रेत में बूंद का अस्तित्व जो क्षण मे विलीन होने वाला होता है। अतएव प्रियतम ने जीवन का दान क्या दिया है एक निर्मम विनोद मात्र किया है। इसकी कोई सार्थकता नही।

विशेष—१. सामान्यतः जिसे जीवन समझा जाता है—साधना विहीन जीवन—उसमे कोई सार नही। विरह के उपकरण ही चरम सत्य है, अतएव कवयित्री अथवा साधिका अपने प्राणपिक से यही कहती है कि प्रिय के नाम की रटना कर।

समस्त कविता में अपह्नुति अलंकार का सहज सौंदर्य है। इस कविता में आत्म संबोधन है जो लोक वार्ताओ से प्रभावित है। लोक गीत अनेक प्रकार के पक्षियो को सम्बोधित करके लिखे गए हैं।

किसी विरहणी ने भी 'कागा' से कहा था—

> कागा सब तन खाइयो, चुन चुन खइयो माँस,
> दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस।

जायसी की नागमती ने भी तोते से अपनी व्यथा-कथा को कहा था।

अवतरण—कवयित्री प्रियतम का दुःख रूप मे स्वागत करती है, अर्थात यहाँ साधन ही साध्य वन गया है। दुख ही सारे ससार के साथ रागात्मक सम्वन्ध स्थापित कराता है। आत्मा का विस्तार करते हुए संसार के साथ एक रूप हो जाना ही तो ब्रह्म को पाना है। कवयित्री ऐसा मोक्ष नही चाहती जो संसार-विमुख करे। कवयित्री ने रश्मि में भी यही भाव व्यक्त किया है—

'तुम मानस में बस जाओ,
छिप दुख की अवगुंठन से,
मैं तुम्हें खोजने के मिस,
परिचित हो लूं कण कण से।"

[तुम दुख वन इस पथ से आना !]

अर्थ—हे प्रियतम मैं तुम्हे दुख के रूप मे प्राप्त करूं, जिस प्रकार कांटो से आवेष्ठित होने पर भी गुलाव का विकास होता है उसी प्रकार विघ्नवाधाओ के वीच से ही मेरा विकास हो—मैं वाधाओ का सहज स्वागत कर सकूं क्योंकि कंटकाकीर्ण होने पर ही जीवन-पाटल का उचित विकास सम्भव है।

पुष्प की चरम सार्थकता हार मे गुंथने मे ही है, पर जिस पुष्प का हृदय न विघा हो वह हार कैसे वन सकता है ? उसी प्रकार जो दुख से अपरिचित है उसके लिये जीवन की सिद्धि दुराशामात्र है।

[वह सौरभ हूं मैं जो उड़कर,]

अर्थ—हे प्रिय! मेरा अस्तित्व उस सौरभ के समान है, जो कलिका

से उद्भूत होता है, किन्तु जब वह एक बार कलिका की क्रोड़ छोड़ कर उड जाता है तो पुनः वापस न लौट वातावरण मे ही विलीन हो जाता है । फिर भी कलिका का अस्तित्व उसके लिए सर्वथा अनिवार्य है क्योकि ससार अमूर्त सौरभ को मूर्त कलिका के कारण ही जान सकता है ।

यह मानव-चेतना भी सौरभवत है। जब एक बार शरीर से इसका सम्बन्ध विच्छिन्न हुआ, तब उसी शरीर मे लौट कर नही आती। शरीर आत्मा के अभावमे निर्जीव हो जाता है, यह ठीक है, किन्तु उस आत्मा की अभिव्यक्ति तो शरीर के माध्यम से ही होती है—इस मानव जीवन का भी अपना महत्व है ।

[नित जलता रहने दो तिल-तिल,]

शब्दार्थ—विभूत=राख

अर्थ—मेरी कामना यह है कि मेरा हृदय निरन्तर दुखाग्नि मे जलता रहे, और जब राख हो जाए तो उसमे अपने चरणचिन्हो को अंकित कर जाना ।

विशेष—दुख में जलने से मन पवित्र और उन्नत होता है। पंत ने गुञ्जन मे आत्मा के लिये लिखा है—

सोने सा उज्जवल बनने,
तपता नित प्राणो का धन,
दुःख के तम को खा-खा कर,
भरती प्रकाश से वह मन ।"

और ब्रह्म को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सभी मलिनता भस्म हो जाए, पवित्र हुए बिना उसे पाना न पाने के बराबर है । तुलसीदास ने विनयपत्रिका में यही भावना व्यक्त की है—

"तुम अपनायो जानि हू जब मन फिरि परि है"

[वर देते हो तो कर दो ना]

अर्थ—हे प्रिय यदि तुम मुझे वरदान देना चाहते हो तो यही कृपा करो कि मेरी इस जन्म-मरण (आवागमन) रूपी आख मिचौनी को स्थाई कर दो—मै मोक्ष को प्राप्त न कर सकू। कारण, इसके दोनो हा रूप—जीवन और मरण—अपने आप मे सुन्दर-मधुर है। समस्त जीवन (आख मिचौनी के खेल मे जव तक आखे खुली है) तो तुम्हारी खोज करने मे व्यतीत होता है और इसी लिये मधुर है, मरण इस लिये सार्थक है क्योकि मरना तुमको छूना ही है, अपने पृथक अस्तित्व की समाप्ति है।

विशेष—आँख मिचौनी के खेल मे जो हाथ देनेवाला (चोर) होता है, खिलाडियो मे से जब किसी को छू लेता है तो वह स्वय अपने उन साथियो से मिल जाता है। उसका कोई पृथक अस्तित्व नही रह जाता।

[प्रिय! तेरे उर में जग जावे]

अर्थ—पपीहा साधक-आराधक है और मेघ उसका साध्य-आराध्य। पपीहे की आकुल पुकार ही मेघ मे बिजली के रूप मे मूर्तिमान होती रहती है—पपीहे की सफलता यही है कि उसने अपनी व्याकुल साधना से मेघ को भी बिजली के रूप मे तडपा दिया है, उसकी निरपेक्षता भंग कर दी है। इस प्रकार वादल के हृदय की चमक जिसे प्रेम के रहस्यो से अपरिचित-अनभिज्ञ संसार बिजली की कौध समझता है, वस्तुत प्रेमी पपीहे की आराध्य वादल के हृदय मे उत्पन्न की गई तडपन है। यही अवस्था कवयित्री अपने वारे मे समझाना चाहती है।

विशेष—यह नवीन अद्भुत कल्पना प्रशंसनीय है।

[तुम चुपके से आ वस जाओ]

अर्थ—तुम अज्ञात रूप से मेरे जीवन के व्यापारो—सुख-दु:ख,

स्वप्नो और श्वासों-मे आकर वस जाओ, चाहे कितने ही प्रच्छन्न रूप से तुम रमो, पर मेरी चेतना और दृष्टि तुम्हे पहचान ही लेंगी।

[जड़ जग के अणुओ में स्मित से]

अर्थ—इस जड प्रकृति के परमाणु तुम्हारी सुन्दर-स्निग्ध मुस्कान के स्पर्श मात्र से जीवित—स्पदित हो उठे। इस प्रकार तुम्हारे कारण यदि जड प्रकृति मे जीवन-सचार हुआ तो अनेक रूपो मे उसका पल्लवन और विकास मानव की आखो के जल के सिंचन से—मानव की करुणा और सहानुभूति से हुआ।

विशेष—प्रकृति मे दो तत्त्व प्रमुख है—१. आनन्द, २. मानव-सहानुभूति। प्रकृति को आनद तत्त्व ब्रह्म से मिला, कारण ब्रह्म आनन्द-मय है, किन्तु उसका समुचित विकास मानव-करुणा से ही हुआ है। सूर्य (आनन्द) ने अंकुर को जीवन दान दिया और जल (मानव सुलभ करुणा) ने विकसित किया।

[कुहरा जैसे घन आतप में]

अर्थ—जैसे कुहरा प्रखर धूप में लय हो जाता है, उसी प्रकार यह संसार मेरी चेतना मे लय हो जायगा—मेरी इस दुःख की साधना का साध्य यही है कि मेरी आत्मा का इतना विस्तार हो जायगा कि संसार मेरे से भिन्न नही रहेगा। अतएव अपने आनन्दमय स्वरो से मेरी इस लघु जीवन रूपी वीन को झंकृत मत कर देना, कही दुख की साधना भग न हो जाए। क्योकि दुख की साधना से ही विश्व के साथ एकरूपता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

विशेष १. महादेवी को दुख क्यो इतना अधिक प्रिय है—यह कविता इसका पूर्ण प्रमाण है।

२. इस कविता में आकाक्षा संचारी भाव है।

अवतरण—कविता संख्या (३५) में कवयित्री ने जीवन का 'चरम सत्य' 'सुधि का दंशन' बताया था। यही भाव इस कविता मे है। मानव व्यक्तित्व की अपने आप मे कोई सार्थकता नही, उसकी सार्थकता अलौकिक प्रियतम के विरह मे है। इसी विरह की अभिव्यक्ति के माध्यम मे नयन साधिका को वरदान स्वरूप प्रतीत होते हैं।

[अलि वरदान मेरे नयन]

अर्थ—हे सखि ! ये नेत्र मेरे लिए वरदान है। वैसे तो भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनो प्रकार का मोह नेत्रो द्वारा ही होता है और नेत्र लौकिक सांसारिकता की ओर आकृष्ट होकर साधना की कठिनाई भी उपस्थित कर सकते है किन्तु मेरे नेत्रो ने भौतिक आकर्षणों का तिरस्कार किया है, इसलिए ये वरदान है।

(नानारूपी आकर्षणो से आविल) संसार रूपी अतल-अथाह सागर उमड रहा है जिसमें सुख की अमित तरगे उठ रही है पर मेघस्वरूप प्रियतम के अनन्य प्रेमी मेरे नयन-चातकों की प्यास इनसे नही मिट सकती। जिस प्रकार चातक की तृप्ति मेघ की बूंद से ही होती है उसी प्रकार प्रिय-दर्शन की बूंद—जिसे आँसू व्यक्त करते हैं—से ही मेरे नयन तृप्त हो सकते हैं।

विशेष—१. साधिका ने ससार तथा संसार के सुखो, दोनो की उपेक्षा की है।

२. अन्य कवियो ने अपने को ही चातक माना है (तुलसी की 'चातक चौतीसी' प्रसिद्ध है) किन्तु यहाँ नेत्रों को।

[पी उजाला तिमिर पल मे]

शब्दार्थ—तिमिर=अन्धकार। चपक=शराब का प्याला।

अर्थ—अन्धकार रूपी मद्यप (शराबी) सूर्य रूपी मदिरा पात्र (प्याले) से प्रकाश रूपी मदिरा को पीकर, पात्र को जल मे फेंक दिया करता है—सूर्य के डूबने से प्रकाश समाप्त हो जाता है, दिन ढल जाता है और रात्रि का आगमन होता है। सारी दिशाएँ तिमिराच्छादित हो जाती हैं। तब उस नीरव एकात मे ये दु:ख के अश्रु प्रवाहित करते हुए मादक मदिरा के प्याले रूपी नयन संसार के अणु-परमाणु को प्रेम का दान देते रहते हैं।

विशेष—१. दिन की हलचल की समाप्ति के पश्चात् रात्रि के करुणापूर्ण वातावरण मे ही अश्रु अधिक आते हैं। यहाँ अलौकिक प्रियतम के विरह मे साधना-सलग्न नयन अश्रु प्रवाहित करते हैं।

२. कवयित्री की रूप विधायिनी कल्पना ने कमनीय चित्र कलित किया है।

३. यहाँ 'यह' शब्द का प्रयोग बहुवचन में हुआ है। व्याकरण की दृष्टि से यह ठीक नही। 'ये' का प्रयोग होना चाहिए 'स्वरपात' मे भी अन्तर नही आता।

[छू अरुण का किरण चामर]

शब्दार्थ—निर्भर=भरे हुए। चामर=चाँवर।

अर्थ—प्रातःकालीन बाल रवि के स्वर्णिम किरण रूपी चाँवर से रात्रि में जलते हुए तारारूपी दीपक बुझ गए। किन्तु मेरे ये नयन-दीप किसी की प्रतीक्षा मे निरन्तर जल रहे हैं—रात्रि भी तारा-दीपों के रूपो में किसीकी प्रतीक्षा करती है किन्तु वह इस व्रत का निर्वाह नही कर पाती और दीपक बुझ जाते हैं पर मेरे नयनदीप निर्निमेष-निरन्तर पथ में प्रियतम की प्रतीक्षा करते रहते हैं। दुखाधकारमय

विरह मे ये नयन-दीप ही एक मात्र सम्बल है, अपने साधना के प्रकाश से विपथ नही होने देते और मार्ग दर्शन करते रहते है।

विशेष—'तममय' दुखमय का प्रतीक है।

[उलझते नित बुदबुदे शत]

अर्थ—जीवन रूपी सरिता मे ये नेत्र कमलवत है—पंकिलता मे पंकज, सरिता की हलचलो से अप्रभावित-जीवन-सरिता मे नयन-कमलो को निरन्तर अनेको सुख के बुलबुले उलझाते तथा दुख एवं कठिनाइयो के भँवर घेरते रहते है किन्तु जैसे कमल सूर्य की किरणो से सुशोभित हो खिल उठता है उसी प्रकार प्रिय की मुस्कान से रंजित ये नेत्र भी जीवन के सुख-दुखो से असम्पृक्त अपने साधना-पथ पर अटल रहते है तथा जीवन के हर्ष-विमर्षो से अविचलित।

[मै मिटूँ ज्यो मिट गया घन]

अर्थ—मेरा अस्तित्व चाहे बादल के समान क्षणिक सिद्ध हो, मेरे हृदय की कम्पन भी बिजली की कौंध के समान मिट जाय पर मेरी यही कामना है कि प्रत्येक कण से, अकुरो सदृश, प्रियतम के प्रेम मे पगे नेत्र उत्पन्न हो जायें—बादलो के त्याग से पृथ्वी पर अनेक अकुर उत्पन्न हो जाते है उसी प्रकार मेरा व्यक्तित्व चाहे नष्ट हो जाए, किन्तु प्रिय-प्रेम-पूरित, वरदान स्वरूप, नयन चिरंतन बने रहे।

विशेष—१. समस्त कविता मे रूपको की रमणीय चित्रमाला है।

२. नीहार की ३७ कविता भी नेत्रो पर है। वहाँ भी कवयित्री ने यही कामना की है। कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

सजग लखती थीं तेरी राह।
सुलाकर प्राणों में अवसाद,
पलक प्यालों से पी पी देव!
मधुर आसव सी तेरी याद!

× × ×

आज आये हो हे करुणेश !
इन्हे जो तुम देने वरदान,
गला कर मेरे सारे अंग
करो दो आँखो का निर्माण !

अवतरण—मानव चेतना का मूल उद्गम अर्थात् परमात्मा जितना रहस्यमय है उतना ही उस तक पहुँचने का मार्ग भी—साधना भी रहस्यमय है।

[दूर घर मै पथ से अनजान]

शब्दार्थ—पारावार=सागर। पुलिन=किनारा। सिकतामय=रेत से युक्त, नीरस।

अर्थ—मेरा गन्तव्य (अभीष्ट प्रियतम) भी दूर है, और मै उस तक पहुँचने के मार्ग से भी अपरिचित हूँ—उपयुक्त साधना की भी कमी है, क्योकि मेरे जीवन की दुर्बलताएँ ही मेरे साधना-पथ की बाधाएँ है। यथा मेरी अपनी ही चितवन—निराशा—से अन्धकार का सागर उमड़ रहा है, इसलिए पथ नही सूझता मेरे जीवन की इच्छा-आकाक्षाएँ काँटो के रूप में पथ में बिखरी पडी है। किनारे की सिकता के समान मेरे हृदय मे शुष्कता—नीरसता बनी हुई है।

[मेरी निश्वासों से बहती]

शब्दार्थ—झंझावात=आँधी। उत्पात=प्रलय।

अर्थ—मार्ग की बाधाएँ—आँधी, तूफान, बिजली आदि—मेरे व्यक्तित्व मे ही अन्तर्भूत है। मेरी घोर आहे मानो भीषण आँधी का रूप तथा निरन्तर उमड़ता हुआ अश्रु-प्रवाह मानों प्रलय-प्रवाह है। मेरी हृदय की उठती हुई टीस मे बिजली छिपी हुई है।

विशेष—छायावादी कवि अलकारो के चयन मे प्रभाव-साम्य का विशेष ध्यान रखते है। इससे कवि का अभीष्ट पूरी प्रभावोत्पादकता

से व्यक्त हो उठता है। यहाँ आँधी, प्रलय और बिजली के चयन में यही बात है। "आँसू" में प्रसाद ने भी अपनी विरह-दशा को इसी प्रकार व्यक्त किया है—

"झंझा झकोर ग र्जन है,
बिजली है नीरद माला,
पाकर इस शून्य हृदय को,
सबने आ डेरा डाला।"

[मेरी ही प्रति-ध्वनि करती पल-पल मेरा उपहास]

शब्दार्थ—प्रतिध्वनि=गूँज।

अर्थ—मेरे पैरों की आहट की गूँज मुझ पर ही हँसती है—मेरी साधना की दुर्बलता मेरी हँसी उड़ाती है। (जब किसी निर्जन पथ में कोई पथिक चलता है तो भय के कारण अपनी पदचाप की ही ध्वनि से उसे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई दूसरा उसके साथ चल रहा है।) इससे एक शंका और भय उत्पन्न हो जाता है और व्यक्ति अपने सत्स्वरूप को समझने में असमर्थ हो जाता है।

विशेष—तुलना कीजिए—

आती है शून्य जगत से क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी,
टकराती बिलखाती पगली सी देती फेरी।

—प्रसाद

[दुख में जाग उठा अपनेपन का सोला संसार]

अर्थ—दुःख या एक प्रकार के अपनत्व की भावना जाग उठी है—दुःख एक प्रकार के ममत्व की भावना से स्पन्दित हो उठा है। सुख में झंकारसम क्षीण किन्तु मधुर स्मृतियाँ समाहित है। फलतः ऐसी अवस्था में सुख-दुःख दोनों प्रिय हो उठे हैं।

[विंदु-विंदु ढुलने से भरता]

अर्थ—यह एक विचित्र पहेली है, जो सुलझाने मे नही आती—आंखों से निरन्तर अश्रु-विन्दु प्रवाहित होते रहते है, और हृदय मे सागर उमड़ने लगता है। आँसुओं के कोष हृदय को तो रिक्त होना चाहिए था, वह उल्टा भरता है। क्षण-क्षण मिटने से तो जीवन विनष्ट होता है, किन्तु यहाँ जीवन का निर्माण हो रहा है—यही विरोध-वैचित्र्य है। वस्तुतः विरोध नही विरोधाभास है। क्योकि विरह-जन्य अश्रुओ से तो प्रेम का संवर्द्धन होता जाता है। साधना दृढतर होती जाती है, और भौतिक जीवन के क्षय से आध्यात्मिक जीवन अक्षय-अमर होता जाता है—आत्मोन्नति हो रही है।

विशेष—१. विरोधाभास अलकार है।

२. उपर्युक्त पंक्तियों में "Die to live" का भाव है।

[पल-पल के झरने से बनता]

अर्थ—क्षण-क्षण (रूपी मोतियों) के व्यतीत होने (झरने) से युग रूपी हार बनता है। विरोध यही है कि माला लड़ियों के संगुम्फन से बनती है, झरने से नही। श्वास-श्वास (मेघो) को खोकर स्वर्ग (आकाश) से व्यापार होता रहता है—अचिर पार्थिव जीवन का ह्रास और चिर अपार्थिव जीवन का विकास होता रहता है। विरोध यही है कि नित्य खोकर व्यापार नही किया जाता। इस प्रकार अभिशाप और वरदान की स्थिति एक साथ है।

विशेष—विरोधाभास अलंकार है, क्योकि विरोध का परिहार भी साथ ही हो रहा है।

२. मेघ मानो पृथ्वी के श्वास है, जो आकाश के साथ सम्बन्ध जोड़ते है।

[इस पथ का कण-कण आकर्षण]

शब्दार्थ—दुराव = छिपाव ।

अर्थ—यह प्रियतम (घर) भी रहस्यमय है, और साधना (मार्ग) भी । रहस्यमय होने से इस पथ में एक आकर्षण है, और इसे अपनाने की इच्छा बरबस जाग उठती है—प्रिय मेरे लिए एक पहेली है, फिर भी इस पहेली का प्रभाव अमिट है, और मुझे इसके सुलझाते रहने के बन्धन में अभिमान है ।

विशेष—१. 'मूक पहेली'—पहेली मूक इसलिए है कि इसका उत्तर नहीं मिलता ।

२. "अमिट दुराव"—दुराव अमिट इसलिए है क्योंकि साधिका का प्रियतम कभी न मिलने वाला रहस्यमय है ।

३. साधिका को प्रियतम से साक्षात्कार करने में आनन्द नहीं, उसे केवल रहस्य तथा बन्धन की ग्रन्थियाँ खोलने में ही गर्व है, इसीलिए वह अपरिचित पथ पर दूर प्रियतम को मिलने के लिए चलती है ।

अवतरण—प्राय. भगवान की पूजा मन्दिर मे जल, अक्षत, चन्दन दीप, धूप आदि स्थूल उपकरणो से की जाती है, किन्तु रहस्यवाद मे व्यक्त-प्रत्यक्ष के साथ रागात्मक सम्वन्ध न होकर अव्यक्त अथवा निराकार के साथ होता है। रहस्यवादी अपने अन्त करण के अनुभूति खंड के भीतर ही उस अखण्ड ज्योति का साक्षात्कार करता रहता है। उसका जीवन मन्दिर और मन दीपक वन जाता है, और यह उपासना भी निरन्तर गतिशील रहती है—समग्र चेतना सदैव उसकी अर्चना-वन्दना मे रत रहती है।

शब्दार्थ—अभिनन्दन=स्वागत, गुणगान आदि। अक्षत=चावल। उत्पल=कमल। उन्मीलन=खिलना।

अर्थ—मुझे स्थूल पूजा-अर्चना की आवश्यकता नही। मेरा अत्यन्त छोटा जीवन ही उस सीमा-रहित अर्थात् विराट् विश्वेश्वर का मनोहर मन्दिर है, मेरी श्वासे सदैव उस प्रियतम का स्वागत अथवा जय-जयकार करती है। उनके चरणो की धूल का प्रक्षालन नयनो से उमड़ते अश्रुओ द्वारा होता है। मै प्रेमाधिक्य से खड़े हुए रोमाचित रोंगटो से ही उनके मस्तक पर अक्षत तथा हृदयस्थ मधुर पीडा का ही चन्दन लगाती हूँ। प्रेमरूपी तेल से भरा हुआ मनरूपी दीपक जलाती हूँ। मै अपने नयनो को ही नव उत्फुल्ल (खिले हुए) कमल के रूप मे उनके चरणों पर चढाती हूँ। हृदय की धडकन ही धूप वन कर उडती रहती है। मेरे ओठ प्रिय का मन्त्रजाप करते है और पलके झपक कर साथ ताली वजाती है।

[उनकी वीणा ....भूली]

अर्थ—उस ब्रह्म की हृदय वीणा की नई इच्छा (एकोऽहम् बहु स्याम) रूपी कम्पन से मुक्त जीवरूपी ध्वनि का निर्माण हुआ किन्तु अब मैं ध्वनि—वीणा में पुनः किसी प्रकार न जा सकी। प्रतिध्वनि के समान केवल शून्य में विचरती रह गई—मेरा व्यक्तित्व विश्व में भटकता रह गया।

विशेष—अन्य गीतों की अपेक्षा इस गीत से भाव-ऐक्य और तज्जन्य प्रभाव का अधिक अनुभव होता है। एक ही भाव को तीन चित्रों में स्पष्ट किया गया है।

अवतरण—महादेवी वुद्ध की करुणा से प्रभावित है। इस कविता में वुद्ध की करुणा के साथ कृष्ण की वाँसुरी तथा शंख से भी भारत-वासी को उद्बोधित किया गया है।

[जाग वेसुध जाग......जाग]

शब्दार्थ—हीरक हार=हीरो का हार। सन्ताप=दुख।

अर्थ—हे स्वार्थ-निद्रा मे सुप्त मानव जाग। तुम्हे उसी सिद्धार्थ के आदर्श जगाने आए हैं जिसने हीरक हार—राज पाट और सुख वैभव—को छोडकर, अश्रु कणों—ससार के प्रति करुणा-भावना—के हार से उर को सुशोभित किया, और फिर इसी करुणा अथवा संवेदना से प्रेरित होकर जिसने प्रत्येक जन से दुखकी भिक्षा मांगी अर्थात सवके दुखो को अपना समझ उनके दुख को दूर किया; काँटे सम कठोर हृदय हीनो को अपनी कुसुम-कोमल अहिसक भावनाओ से सहृदय वना दिया और इस प्रकार संसार के दुख-ताप को निज पावन स्पर्श से चन्दन सम शीतल। ऐसी करुणा के मूर्तिमान प्रतिमा सिद्धार्थ की सावना तुम्हारा आह्वान कर रही है।

[शंख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान]

अर्थ—जिसके शंख में (निर्माण के लिए) विध्वस का स्वर और मुरली मे निर्माण का मजुल वरदान था; जिसकी दृष्टि मे अदम्य उत्साह और प्रेरणा की शक्ति और (मुरली के कारण) ओठो में समस्त संसार की शोभा वर्तमान थी, जिसकी वाँसुरी के स्वरो ने पावन प्रेम

का प्रसार किया, आज उसी कृष्ण की प्रतिध्वनि, दैवी वाणी के रूप मे गूंज रही है। हे कृष्ण की क्रीड़ा भूमि (भारत) के वासी अब तू अज्ञान-निद्रा से जाग उठ।

[रात के पथहीन तम में मधुर जिसके श्वास]

अर्थ—रात्रि के निराशामय घने अंधकार में जिसकी चेतना कण-कण मे अपार सुखाशा की सुगंध का प्रभाव-विस्तार करती है, कण्ट-कटको की शैया पर भी जो करुणा-कणो (ओस) के ताज से सुशोभित रहता है—दूसरो के प्रति संवेदनशील रहता है—हे भाग्यवान मानव तू भी उसी खिले हुए गुलाब के समान खिल उठ।

विशेष—गुलाब के द्वारा रगीनी, कोमलता, स्फूर्ति और आह्लाद की व्यञ्जना हो रही है।

इस समस्त कविता में अदम्य उद्बोधन के ओज के साथ मानव-प्रेम और मानव सौन्दर्य का मुखर उल्लास है।

यह कविता मानो 'साध्यगीत' की निम्न अमर कविता का प्रथम सोपान है—

> "जाग तुझको दूर जाना।
> चिर सजग, आँखें उनींदी, आज कैसा व्यस्त बाना।"

यह कविता उत्साह की भावना व्यक्त करनेवाली है। किन्तु यहाँ शास्त्र-सम्मत ओज नही—ओज गुण के वाचक वर्ण नही प्रयुक्त हुए, किन्तु अर्थ अथवा भाव मे दीप्ति स्पष्ट है।

अवतरण—ससीम-असीम, सृष्टि-प्रलय, जीवन-मृत्यु, दिन-रात आदि उसी सारभूत सत्ता के ही रूप हैं। कवयित्री विराट शक्ति की अप्सरारूप में कल्पना करती है, जिसमे ससीम-असीम आदि सभी एक संतुलित नृत्य का रूप ग्रहण कर लेते है और वह समस्त ससार को अपने संकेतो पर नचाने मे समर्थ है।

[लय गीत मदिर, गति ताल अमर]

शब्दार्थ—सित=सफेद। असित=काला। मंजीर=नूपुर। अलक=वाल। किंकिणि=कर्धनी।

अर्थ—हे विराट शक्ति अप्सरा! तेरा नृत्य कितना मनोहर है—परिवर्तनमयी क्रियाएं कितनी सुन्दर है। इस नृत्य जन्य गीत की लय कितनी मस्त कर देने वाली, कितनी आनन्द प्रद है। इस नृत्य की गति और ताल चिरतन-शाश्वत है। तात्पर्य यह है कि संसार की समस्त सृजन-क्रिया तथा परिवर्तन-प्रक्रिया इस नृत्य से प्रभावित है। और ये समस्त प्रक्रियाएं अपने आप मे सुन्दर हैं।

ये अंधकार और प्रकाश—रात और दिन तेरे श्याम और श्वेत वस्त्र हैं। नृत्य-निरत नूपुरो की झंकार ही सागर की गर्जन है। यह आंधी और तूफान ही तुम्हारा केशजाल है। मेघों की गर्जन म तुम्हारी कर्धनी का स्वर है। इस प्रकार प्रकृति की सभी क्रियाओ में तुम्हारा ही प्रभाव-विस्तार है और इनमें एक सुन्दरता है।

विशेष—यहाँ सागरूपक का चमत्कार है।

[रवि शशि तेरे अवतंस लोल]

शब्दार्थ—अवतंस=कुंडल। लोल=चंचल। सीमंत=मांग। विभ्रम=कटाक्ष, अदाएं।

अर्थ—सूर्य और चन्द्र ही तेरे कुडल है जो नृत्य के कारण हिल रहे है। ये तारे मानो तेरी मांग में ग्रथित मोती है, तेरा सविलास कटाक्ष ही विजली है, तेरी हँसी ही इन्द्रधनुष है। नृत्य के परिश्रम जन्य पसीने की बूंदें ही ओस-बिंदुओ के रूप मे झर रही है।

[युग है पलको का उन्मीलन]

शब्दार्थ—उन्मीलन=आँख का खुलना। लय=प्रलय। स्पदन=कम्पन।

अर्थ—तेरी पलको का मीलन-उन्मीलन, वद करना, खोलना ही एक युग वीतना है। असख्य प्रलय और सृष्टि तेरे स्पदन मे समाविष्ट है। यह जड़-चेतनमय विश्व, पूरी तल्लीनता-तन्मयता से, तेरी सांस-सांस के साथ नाच उठता है—सभी कुछ तुम्हारे संकेत से हो रहा है, विश्व की परिवर्तन-प्रक्रिया तुम्ही पर आश्रित है।

[तेरी प्रतिध्वनि बनती मधुदिन]

शब्दार्थ—प्रतिध्वनि=गूंज।

अर्थ—जैसे कोकिल की काकली-ध्वनि के स्पर्श से प्रकृति का प्रत्येक अ ग वासतिक सुषमा से जगमगा उठता है उसी प्रकार तुम्हारी गूंज ही वसंत का प्रतिरूप वनती है—तुम्हारी ध्वनि ही कोकिल कूजित वसत का दिन है। जव तू निकट आती है, तो मानो वर्षा-वेला आ जाती है—जिस प्रकार व्यक्ति के निकट आने से छाया सघन होती जाती है तेरे समीप आने से वर्षा का आविर्भाव होता है। हे रूपसि! तुम्हारे स्पर्श से तुझ में ही लीन होकर जड़ भी अमरता का वरदान पा लेता है।

[जड़ कण-कण के प्याले झलमल]

शब्दार्थ—सीकर=बूँद।

अर्थ—पहले तो तुम सूर्य के रूप में आकर प्रत्येक कण को आलोकित करती हुई जीवनदान देती हो—सूर्य की रश्मियो से जगमगाने वाला जड़-प्रकृति का प्रत्येक कण एक प्याला है जिसमें जीवन रूपी मदिरा छलक उठती है– प्रकृति का प्रत्येक कण जीवन से स्पंदित हो जाता है। फिर तू नाचते-नाचते इन प्यालों की उमड़ती हुई जीवन मदिरा की एक-एक बूंद इस सीमा तक पीती है कि ये विल्कुल निःशेप हो जाते हैं—तु इनका सारा जीवन सोख लेती है। इस प्रकार जीवन तथा मृत्यु दोनो देने वाली नृत्यक्रिया मनोहर है।

विशेष—इन पक्तियो का ध्वनि चित्र आस्वादनीय है।

[बिखराती······अधर]

शब्दार्थ—लास=नृत्य।

अर्थ– तू अपने उल्लास-नृत्य से सब पर नई तल्लीनता, मस्ती, और हर्षोल्लास का प्रभाव-विस्तार करती चलती है। प्रत्येक कण रूपी प्याला तेरे ओठों का पहले स्पर्श पाने को आतुर आकुल रहता है ताकि तुम्हारे वरद स्पर्श से अमर हो जाए।

[हे······कोमलतर]

अर्थ—सृष्टि और प्रलय, ससीम और असीम सभी तुझ में आलिंगन बद्ध है–मिले हुए हैं। तुझे कोई भी भयानक नही कह सकता क्योकि तुम्हारा यह लीला-नृत्य अपने आप में सुन्दर तथा गूढ तथ्यो को छिपाए हुए है, तू ठीक ही समझती है कि एकरसता विश्व के लिए घोर सिद्ध हो सकती है, अतैव तेरी सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि करने में एक नूतनता जन्य आनन्द है। अतैव तू कोमल है, कठोर नही।

[तेरे......सुन्दरतर]

अर्थ—सृष्टि के सब उपकरणो का चरम गंतव्य तुम्ही हो, उनकी चरम सार्थकता तुझ में लीन होने की है। जैसे प्राण रूपी दीपक तुम्हारी आरती उतारने के लिए नित्य साधना की लौ में जलते है, फूल और विहान तुम्हारी पूजा हेतु ही हंसते-खिलते है। हे श्यामान्गिनी तुम्हारे लीला-भाव के संतोष-परितोष के लिए ही संसार मिट-मिट कर वनता और वन वन कर मिटता रहता है और इस प्रकार नित्य नवीन रूप धारण कर सुन्दरतर वना रहता है। इस प्रकार यह सारी क्रीड़ा तुम्हारी और तुम्हारे ही निमित्त है। प्रकृति की विराट सत्ता का यह लीला-नृत्य अपने आप मे सुन्दर है।

विशेष—इस कविता वोद्धव्य 'मृत्यु' भी हो सकती है।

अवतरण—सखी नायिका से प्रियतम के स्वागत-सत्कार के लिए आवश्यक साधना तथा तैयारी करने के लिए कह रही है।

[उर तिमिरमय घर तिमिरमय]

शब्दार्थ—तिमिरमय=अंधकारमय। विहान=प्रात.काल।

अर्थ—सखी नायिका से कहती है कि हृदय मे भी निराशा है और बाहर जीवन अथवा जगत मे भी अंधकार है। अतएव साधना-दीप जलाकर उल्लास-प्रकाश से प्रियागमन के लिए बाहर-भीतर को उपयुक्त बना ले।

प्रियागमन के लिए जो पथ है वह भी स्वच्छ नही क्योकि रात और विहान, दुःख और सुख अत्यधिक ओस रूपी अश्रु बहाकर पथ को पंकिल बना गए हैं। साथ ही जीवन के स्वप्न, भूले और अहकार-अभिमान कॉच के टुकडो के समान बिछकर प्रिय-पथ को और कठिन बना रहे है। प्रियतम तो कुसुम-कोमल हैं और पथ मे तुम्हारे जीवन की दुर्बलताओ ने कांटे बिखेर दिए है। अतएव हे सजनि! प्रियागमन की सुविधा हेतु अपनी साधना के सुकुमार पलक-पाँवड़े बिछा दे।

विशेष—"पलके बिछाना" मुहावरा है।

[तृषित जीवन में घिरे घन]

अर्थ—पहले तो तेरे हृदय की निश्वासे निर्गत होकर अभाव ग्रस्त जीवन मे मेघ बन गए पुन. वही पलक रूपी सीपी में बरस कर मोती बनकर धूलि मे ढुलक रहे है और व्यर्थ जा रहे है। अच्छा यही

है कि प्रियतम के स्वागतार्थ हार डालने के लिए इन मोतियों को गूंथ ले—अपनी साधना को संजो ले ताकि इस साधना के हार को तू उपहार स्वरूप भेंट कर सके।

[मिलन वेला में अलस तू]

अर्थ—प्रिय-मिलन की प्रतीक्षा मे दीर्घ जागरण के कारण जब अलसा कर-तू सो गई तो प्रियतम आया किन्तु मिलन के समय तुम्हें सोता देख तुम्हारे स्वप्नोमें अपनी मुस्कान छोड़ गया—तुम्हारा स्वप्न-मिलन हुआ। लौटे हुए प्रियतम की वही प्रतिध्वनि, वही क्षण, नीद के साथ-साथ पुनः आ रहे है।

[तुम सो जाओ मैं गाऊँ]

अवतरण—कवयित्री अपने प्रियतम को पाने के निमित्त साधना-मार्ग पर दृढ़ता से गतिशील है। सुख दु:ख दोनो अवस्थाओं में साधना अटूट-अटल है और जीवन के प्रत्येक क्षण को साधना से सुन्दर बनाने का आग्रह है।

अर्थ—महादेवी कहती है कि हे प्रियतम ! मुझे संसार-जन्य मोह-निद्रा में सोते और तुम्हें मुझे सुलाने के हेतु लोरी गाते—लीला करते—बहुत दिन हो गए। अब मेरा निवेदन यही है कि तुम यह लोरी गाना बन्द करो—माया अथवा लीला को समाप्त करो—और मै तुम्हे पलको की स्वप्न-शैया पर सुलाऊँ क्योंकि मैने तुम्हारी लोरी का संगीत जान लिया है—मैं तुम्हारे लीला-रहस्य से परिचित हो गई हूँ।

[प्रिय तेरे नभ मन्दिर के]

अर्थ—हे प्रिय ! तुम्हारे आकाश के मणिदीप (तारे) बार-बार बुझ जाया करते हैं—अस्थाई है। अब मैं अपने प्राणो रूपी दीपक को तुम्हारी प्रेम-साधना की ज्वाला से इस प्रकार जलाऊँगी जिसमें इन तारो की अपेक्षा अनंत प्रकाश होगा—मेरी साधना की परिपक्वता असीम-अनंत प्रकाश प्रसारित करेगी।

[क्यों जीवन के शूलों में]

अर्थ—तुम जीवन के दु:ख रूपी काँटो मे क्यों आते हो। यदि ऐसा है तो तुम्हारे सुकुमार शरीर को कष्ट-कटको से पीड़ा पहुँचती

होगी अतएव तुम्हारे आगमन-पथ में पाँवड़ो के रूप मे अपने अश्रुकोमल मोती विछाने दो।

विशेष—कवयित्री प्रियतम के वियोग मे निरन्तर अश्रु प्रवाहित कर रही ह। साधना से ही मिलन की आशा हो सकती है इसीलिए उसके आँसुओ से प्रियतम का आगमन-पथ सरल हो सकता है।

[पथ की रज में है अंकित]

अर्थ—हे प्रिय! मेरे विरह के पथ मे तुम्हारी स्मृतियो के चरण-चिह्न अकित है। इन्हीं स्मृतियो मे तुम्हारा स्वरूप व्याप्त है अतएव मैं तुम्हारे इसी स्मृति-जन्य स्वरूप का अंजन वना कर अपनी आंखो को अंजित कर लेना चाहती हूँ ताकि मेरे नेत्रो मे तुम्हारी छवि सदैव अंकित रहे।

[जल सौरभ फैलाता उर]

अर्थ—तुम्हारे वियोग की साधना में मेरा हृदय धूप के समान जलकर चारो ओर तुम्हारे प्रेम रूपी सौरभ को फैलाता है। अर्थात् मधुर सात्विक भावो का प्रसार करता है। ऐसे समय में जो तुम्हारी स्मृति है उसे मेरे वेदना जन्य ताप से उष्णता पहुँचती होगी। फिर मैं अपने नेत्रो मे आंसू रूपी वादलो को उमड़ा कर इस स्मृति पर छाने वाली उष्णता को शीतल करने का प्रयत्न क्यो न करूँ।

विशेष—'लोचन कर पानी-पानी' में विशेष सौन्दर्य है। वास्तव मे लोचनो को पानी नही किया जाता प्रत्युत अश्रु-रूप में पानी उनमें भर जाता है। किन्तु विरह की अधिकता तथा गाम्भीर्य व्यक्त करने के लिए ही ऐसा कहा है।

[इन भूलो में मिल जाती]

अर्थ—काँटो के समान जीवन की भूले भी अपना महत्व रखती है क्योकि इनमे ही तेरी पूजा की कलियाँ (भाव) विकसित होती

है। अतएव मैं जग को उपहार स्वरूप अपनी भूलें ही क्यों न दे जाऊँ।

विशेष—यहाँ पर गूढ़ लक्षणा है।

[अपनी असीमता देखो]

अर्थ—हे असीम प्रियतम। मेरे इस छोटे से पार्थिव जीवन रूपी दर्पण में तुम्हें अपनी असीमता परिलक्षित होती दिखाई देती है—असीम ब्रह्म की अभिव्यक्ति नश्वर-सीमित शरीर के माध्यम से ही होता है। तो फिर मैं अपने साधना-सूचक अनवरत अश्रुओं से जीवन के प्रत्येक क्षण की कलुष-कालिमा को धोकर इसे (अपने जीवन को) दर्पण-वत् स्वच्छ सात्विक ही क्यो न बना लूँ? मेरे जीवन का प्रत्येक पल इतना पारदर्शी हो उठेगा कि तुम्हारी असीमता उसमे प्रतिबिम्बित हो उठेगी। प्रत्येक क्षण भी असीम हो जायगा अर्थात् तुम्हारा आभास मुझे सर्वदा, सर्वत्र—मिलता रहेगा।

[हँसने मे छू जाते तुम]

अर्थ—मेरे सुख मे (हँसी मे) तुम्हारे स्पर्श समाए है और दुःख मे भी तुम्हारी स्मृति आती है अर्थात् जब मैं तुम से 'तदाकार तन्मयता' की अवस्था को प्राप्त होती हूँ तो मुझे तुम्हारा स्पर्शजन्य सुख प्राप्त होता है जिससे मैं हँस देती हूँ और जब विरह-साधना में तुम्हारी स्मृति आती है तो मैं रो देती हूँ। इस प्रकार मेरा हँसना और रोना दोनो तुम्हारे सामीप्य के परिचायक हैं। जब ऐसी स्थिति है तो मैं इस प्रकार के रुदन और हास्य—सुख दुःख की अनुभूति—से संसार के अणु-अणु को स्पन्दित क्यो न कर दूँ।

अवतरण—कवयित्री अपने मन तथा दूसरो को—व्यथित मानवता को—पीड़ा से उद्‌बोधित करती है।

[जागो बेसुध रात नहीं यह]

शब्दार्थ—मलयवातास=मलयवायु। मानस=मन .(मानसरोवर) भीनी=हल्की, मद, मीठी खुशबू।

अर्थ—हे मेरे प्राण (अथवा अपनी अज्ञान-निद्रा मे मग्न प्राणी) जागो क्योकि यह सोने का समय नही, वैभव-विलास की रात नही क्योकि जिसे तुम मस्त कर देने वाली मलय समीर समझ रहे हो वह वस्तुत. व्यथा-विदीर्ण हृदय की आहे है जो मन-मानस के दु:ख रूपी जल आँसुओं से सिक्त है। तथा उड़ते—अत्यन्त अल्प आह्लाद की गंध से सुवासित है।

विशेष—यहाँ त्रिविध—शीतल, मंद, सुगध—समीर का वर्णन है जिसे दुख शीतल तथा तनिक सुख सुगधित कर रहा है। वस्तुतः अत्यधिक दुख से तो समीर भीगी हुई है और सुख का. केवल touch मात्र है।

[पारद के मोती से चचल]

शब्दार्थ—पारद=पारा। हिमहास=ओसबिंदु। पाटल=पाडर के पेड़ का पुष्प।

अर्थ—तुम समझ रहे हो कि पाटल पुष्प पर ओसबिन्दु है, पर ऐसा नही, यह तो किसी पीड़ित- व्यथित व्यक्ति की आँखो के ये आँसू है जो पारद के मोती के समान तरल तथा निरन्तर बन-मिट रहे है।

[कूल हीन तम के अन्तर में।]

शब्दार्थ—कूलहीन=विना किनारे के, अनंत। घनचपला=विजली। लास=नृत्य।

अर्थ— बादलो के असीम अंधकार तथा विस्तार मे जो प्रकाश की कौंध हो रही है, वह विद्युत-विलास नही, अपितु वह क्षणिक सुखद स्मृतियाँ है जो पल भर आलोक करती है और फिर निराशा और दुख के अकूल-अथाह अंधकार मे विलुप्त हो जाती है।

[श्रमकण में ले ढुलते हीरक]

शब्दार्थ—श्रमकण=पसीने की बूँद। परिहास=हँसी मजाक।

अर्थ—अपने प्रस्वेद विन्दुओं मे हीरक के समान मूल्यवान तथा चमकीले तारों, चन्द्रमा के रूप मे आशादीप को अपने श्यामांचल से ढके ये स्वप्नों के हँसी-मजाक को लिए हुए रात नही, अपितु तुम्हे जगाने के लिए प्रेरणामयी पीड़ा आई है।

विशेष—१. यदि प्रकृति का वर्णन प्रस्तुत माने तो इस कविता मे अपन्हुति अलंकार है किन्तु यदि संसार की पीडा का वर्णन माना जाय तो निश्चय अलंकार है। वतुस्तः यहाँ दोनो अलकारो का सौंदर्य है क्योंकि दोनों अर्थों के कारण सौन्दर्य है।

२. भावना का सौन्दर्य अलंकार के सौन्दर्य से कही अधिक है, यह इस गीत की सफलता है।